ॐ

❀ हरिः ओ३म् तत्सत् ❀

भगवत्-ज्ञान-रत्न

★

ग्रन्थकार :

श्रीमान् परिव्राजकाचार्य, परमहंस, ब्रह्मलीन

श्री १०८ श्री स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज

★

प्रथम संस्करण २००० } २१ दिसम्बर, १९६० { मूल्य १)

विषय-सूची

इस ग्रन्थ के ग्रन्थकार

श्री १०८ स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज का संक्षिप्त-परिचय

इस देश के सन्तों की सदा से ही यह परम्परा रही है कि महान से महान त्याग करने पर अथवा अधिक से अधिक विद्वान व गुणवान होने पर भी अपने बारे में बताने में सदा ही मौन रहे।

श्री १०८ श्री नारायण स्वामी जी के गुरुदेव एवं इस ग्रन्थ के रचयिता श्री १०८ स्वामी ज्ञानाश्रम जी महाराज के सम्बन्ध में भी हम लोग प्रयत्न करके भी कुछ विशेष जान नहीं सके हैं। जो कुछ पढ़ या सुन कर जान पाये हैं उसे ही पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

श्री महाराज दक्षिण के एक उच्च ब्राह्मण कुटुम्ब के व्यक्ति थे। गृहस्थ आश्रम में रह कर भी आपका जीवन अत्यन्त धार्मिक था। एक बार श्री महाराज जी बीमार पड़े—शरीर के बचने की आशा नहीं रही—आपने मन में विचार किया कि संन्यास के बिना शरीर छोड़ना उचित नहीं। सो आपने अपने पुत्र से कहा, "पुत्र मुझे गंगा में ले चलो" गंगा में पैठकर आपने संन्यास व्रत लिया—और चमत्कार यह हुआ कि आप उसी समय पूर्ण स्वस्थ हो गये और पैदल ही चार मील तक चल कर आये। परन्तु उस दिन से फिर घर वापस नहीं गये।

संन्यास के बाद आप कई वर्षों तक अनेक तीर्थों की यात्रा की तथा बहुत दिनों तक आपने नर्वदा नदी के तट पर कठिन

तपस्या एवं योगाभ्यास में लीन रहे। श्री १०८ स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज भी यहीं साथ में थे। तपस्या और योगाभ्यास के पश्चात श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज तो पुष्करराज चले गये और श्री चरण कानपुर में गंगा जी के किनारे बरुआ नामक स्थान पर जीवन के अन्तिम २५ वर्ष व्यतीत किये।

श्री ज्ञानाश्रम जी महाराज त्राटक, आयुर्वेद, ज्योतिष, एलोपैथिक, वेद, पुरान और षटदर्शन के पूर्ण ज्ञाता थे।

उनमें विचारों की अपूर्व शक्ति थी। बिना कुछ बताये दूसरे व्यक्ति के विचारों को जान लेना साधारण बात थी। इसी प्रकार अपने प्रबल संकल्पों से दूसरे को प्रेरणा देना या दूसरे शब्दों में शक्तिपात करना वे भली-भाँति जानते थे। मनुष्यों की कौन कहे, विषैले जीव-जन्तुओं को भी अपनी इच्छाशक्ति से वश में कर लेते थे।

सुनने में यह बात विचित्र लगती है, परन्तु है सत्य—कि श्री महाराज ने एक वर्ष पूर्व ही अपने शरीर छोड़ने की तिथि तथा समय की घोषणा कर दी थी। मृत्यु समय से कुछ पहिले आप पद्मासन से बैठकर 'ओम' शब्द का उच्चारण करने लगे—कहते हैं—उस समय बड़े वेग का तूफान चल रहा था—शरीर छोड़ते ही वह तूफान शान्त हो गया—जब आपके शरीर को विमान पर रख कर लोग ले चले तो आकाश में बादल भी आ गये। गंगा जी में समाधि देने के उपरान्त, तूफान पूर्ववत् चलने लगा। यह ज्येष्ठ का महीना था। आपके पट शिष्य श्री १०८ श्री नारायण स्वामी जी महाराज उस समय अपने नियमानुसार हिमालय में तप कर रहे थे। गुरुदेव के शरीर शान्त होने का रहस्य जान कर वे भी हिमालय से वापस आ गये।

श्री १०८ श्री ज्ञानाश्रम जी महाराज अपने लिये तो नियम पालन में बड़े कट्टर परन्तु दूसरे के प्रति अत्यन्त दयालु तथा क्षमाशील थे। गरीब व अमीर सभी से उनका व्यवहार समान था। व्यक्तिगत तपस्या एवं साधन के अतिरिक्त श्री महाराज का अधिक समय दूसरों की सेवा, सहायता एवं परोपकार में बीतता था।

श्री महाराज कितने निस्पृह थे—यह इसी से प्रगट होता है कि आश्रम में एक सेठ जी आया करते थे। उनके शरीर में कुछ व्याधि उत्पन्न हो गयी, जिसके कारण शरीर व मन दोनों से दुःखी हो गये। परन्तु श्री स्वामी जी महाराज की कृपा व सत्संग से वह व्याधि निवारण हो गयी। सेठजी बड़े प्रभावित हुए और एक दिन वे ही सेठ जी आये और एक लक्ष मुद्रा श्री चरणों में रख कर स्वीकार करने का आग्रह करने लगे। कहा, महाराज, इस तुच्छ धन से आश्रम बन जायेगा, गंगा का घाट बन जायेगा, आश्रम में आने-जाने वालों की व्यवस्था हो जायेगी—पर श्री महाराज जी ने इस बड़ी धन राशि को बन्धन का हेतु समझा और सेठ से बोले, सेठ जी! एक बात कहें मानोगे ? सेठ जी समझे कि मनोरथ तो पूर्ण हुआ। प्रसन्न होकर तीन बार बचन दिया—तब श्री स्वामी जी ने कहा कि यह रुपया उठा लो और अब आश्रम में कभी न आना। इस पर सेठ जी विह्वल हो उठे और रोने लगे—तब स्वामी जी महाराज ने कृपा करके कभी-कभी आने की आज्ञा दे दी—परन्तु धन लाने को वर्जित कर दिया।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त आप द्वारा लिखे "कल्याण मार्ग" और "संकल्प सिद्धि" नामक दो ग्रन्थ और हैं। इस ग्रन्थ में श्री महाराज ने योग, वैराग्य, ध्यान, धारणा, समाधि, सत्संग, सेवा,

ज्ञान, भक्ति, संकल्प, चरित्रनिर्माण आदि विषय पर बड़ा ही गम्भीर तथा तात्विक विवेचन किया है तथा योगी, संन्यासी, संत एवं गुरु, गृहस्थ एव वानप्रस्थी के कर्त्तव्यों पर गहिरा प्रकाश डाला है जो वास्तव में मनन करने योग्य है।

श्री महाराज जी के इस महान ग्रन्थ के सम्बन्ध में हम अल्पज्ञ अधिक कह ही क्या सकते हैं। हम तो पाठकों से यही विनीत प्रार्थना करते हैं कि वे इस ग्रन्थ का बार-बार पठन-पाठन करके मनन करें तथा इसकी शिक्षायें अपने जीवन में धारण करें तभी ग्रन्थ का असली लाभ उठा सकेंगे।

अन्त में हम श्री १०८ श्री नारायण स्वामी जी के चरणों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं जिनकी अपार कृपा से यह दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाशनार्थ प्राप्त हो सका।

त्रिवेणीतट, प्रयाग —एक चरणानुरागी
४ नवम्बर, १९६०

गुरु-वन्दना

सत्यानन्दस्वरूपाय बोधैकसुखकारिणे ।
नमो वेदांतवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ।।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

अज्ञान तिमिरांधस्य ज्ञानांजन सलाकया ।
चक्षुरुन्मीलतं येन तस्मै श्री गुरवेनमः ।।

ॐ नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्द मूर्तये ।
निष्प्रपंचाय शांताय, निरालम्बाय तेजसे ।।

देवादि देव सर्वज्ञ, सच्चिदानन्द लक्षणः ।
उमारमण भूतेश प्रसीद करुणानिधे ।।

नित्यानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
विश्वातीत गगनसदृशं तत्वमस्यादि लक्षम् ।।

एकं नित्यं विमलमचलम्, सर्वधीः साक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितम् सद्गुरुं तं नमामि ।।

श्रीमन्नारायणो ज्योतिः आत्मानारायणः परः ।
नारायणः परं ब्रह्म, नारायण नमोस्तुते ।।

नारायण का प्रसाद

★ ईर्ष्या द्वेष से बढ़कर कोई शोक नहीं, 'विषय-वासना से बढ़कर कोई दुःख नहीं और इन्द्रिय सुख से बढ़-कर कोई धोखे की वस्तु नहीं।

❀ ❀ ❀ ❀

★ भक्ति उपासना का प्राण है और योग उपासना का शरीर है।

❀ ❀ ❀ ❀

★ आचार्य में जब तक ईश्वर बुद्धि नहीं होती तब तक विद्या एवं ब्रह्म विद्या फलदायक नहीं होती।

❀ ❀ ❀ ❀

★ अपने अवगुण, गुण रूप मालूम होना ही मुख्य अवगुण है।

❀ ❀ ❀ ❀

★ हाट, बाट, और घाट के समीप साधू को कदापि नहीं रहना चाहिये।

❀ ❀ ❀ ❀

★ ध्यान मुक्ति द्वार की कुञ्जी है।

—नारायण स्वामी

श्रीगणेशायनमः

साधन की सफलता के रहस्य

एक महात्मा का आश्रय—
स्त्री में दोष—संग दोष

जैसे एक घर औषधियों से भरा है और हमें कोई रोग है परन्तु जब तक अपने रोग की औषधी उसमें से ढूंढ़ के सेवन न करेंगे तब तक रोग की निवृत्ती नहीं होगी। ऐसे ही शास्त्र में सब प्रकार के साधन रूप औषधी अविद्यादि रोग की निवृत्ती के लिये कही गई है परन्तु अधिकारानुसार साधन रूप औषधी हमें सेवन करनी चाहिये तब ही अविद्यादि की निवृत्ती होगी।

शास्त्र अपना सच्चा मित्र है, क्योंकि ईश्वर से मिलाने वाला है, और प्रत्युपकार नहीं चाहता। फिर कैसा है कि जब बुलाओ तब बोलता है, नहीं तो चुपचाप पड़ा रहता है और जब बोले तब कैसे मीठे-मीठे वचन सुनावे कि चित्त प्रसन्न हो जाय और शान्ति प्राप्त हो, इससे शास्त्र रूप मित्र से मित्रता करनी चाहिये।

किसी एक महात्मा के होके रहो जो जितेन्द्रिय हो और अपने ऊपर कृपा भी करता हो।

जब तक एकान्त में रहने का अभ्यास न करोगे तब तक सुख कभी न पाओगे। एकान्त में रहके विचार करो।

परमात्मा का खूब भजन करो, वे आपही कृपा करेंगे।

जैसे अखाड़े का लतमरा, पहलवान हो जाता है तैसे विरक्तों का संग करते रहो कभी वैसे ही हो जाओगे।

जब ईश्वर के नाम पर अपने माता-पिता को त्याग दिया जिसने ९ मास गर्भ में रक्खा और बाल्यावस्था में नाना प्रकार के कष्ट उठा के पालन-पोषण किया ऐसी सुखदायी माता को तृणवत त्याग दिया तो फिर किसी स्त्री से *प्रेम* राग नहीं करना चाहिये क्योंकि स्त्री अनर्थ का कारण है ऐसे अनर्थ का हेतु स्त्री को महातुच्छ जान के घृणा ही करना चाहिये।

अग्नि कुण्ड *समा* नारी घृतकुंभ समो नरः
दर्शनाद्धरते चित्तं संस्पर्शाद्धरते बलं
संभोगाद्धरते *वीर्यं* नारी प्रत्यक्ष राक्षसी

ऐसे ही जब पिता भ्राता को ईश्वर के नाम पर त्याग दिया तो फिर विरक्त को किसी पुरुष से भी *प्रेम* राग न करना चाहिये क्योंकि संसारी जन दुःख का ही हेतु होते हैं।

आद्यंतवंतः *कौन्तेय* न तेषु रमते बुधः

किसी गृहस्थ के द्वारे अधिक नहीं ठहरना चाहिये, शरीर को कष्ट क्यों न हो सहन कर लेना अच्छा परन्तु गृहस्थ के द्वारे अधिक रुकने से, सुख-दुःख में साझी होना पड़ता है।

किसी से सेवा न लेना--
ज्ञान निष्ठ की समीपता—
देहाभिमान त्याग--देह
को शववत देखना--
गंगा तीर में सिद्धी।

किसी से सेवा न करावे। यदि करावे तो उससे उद्धार होने की युक्ती करे। साधक को किसी ज्ञाननिष्ठ के समीप रह के पहले

जहाँ तक हो सके अपने अंत:करण को खूब मृदु और निर्मल करना चाहिये।

युवावस्था में तीर्थाटन खूब करना। क्योंकि तीर्थों पर प्राय: सिद्ध विरक्त पुरुषों का समागम होता है। उससे अनायास तत्व वस्तु की प्राप्ती हो जाती है।

देहाभिमान त्याग करना, क्योंकि देहाभिमान ही जीव के बन्धन का हेतु है और बनाना भी न चाहिये क्योंकि बनने में दु:ख है।

एक ईश्वर का भरोसा रखना अन्य का नहीं ईश्वर के सगुण रूप का ध्यान करना; बिना सगुण के निगु ण भी नहीं मिलता।

जिस ईश्वर ने गर्भ में रक्षा की और सर्वत्र सर्वकाल रक्षा करता है ऐसे दयालु प्रभू को भुलाने से हम कृतघ्न कहावेंगे।

ईश्वर में अनन्य भक्ती रखनी चाहिये और अखण्ड भजन करना और सच्ची मित्रता करना तथा प्रेम करना चाहिये।

शरीर को मुर्दे की तरह देखना। जो सिद्धी होगी सो इस माते· श्वरी भागीरथी के तीर पर होगी इससे माता की समीपता न छूटने पावे, नित्य प्रति शास्त्र रूप दर्पण से अपने अंत:करण का मिलान करते रहो अवगुणों को त्यागो गुणों की वृद्धी करो।

हितकारक बचन ग्राह्य
हैं; निंदा त्याग; षट को
ब्रह्म विद्या की अप्राप्ती;
द्रव्य संग्रह निषेध;
नाम की उन्नति निषेध।

महात्मा पुरुषों के हितकारक वचन ग्रहण करना। अन्य जहाँ के तहाँ छोड़ देना।

किसी महात्मा के व्यवहार की ओर दृष्टि नहीं देना किन्तु उनके उपदेश ग्रहण करना। यदि उनके व्यवहार पर लक्ष्य दोगे तो उनका उपदेश व्यर्थ हो जायगा।

तब जानो कि हमारा अंत:करण शुद्ध है जब दूसरे की निंदा सुनते ही चित्त में ग्लानि उत्पन्न हो। किसी की निंदा न करे और न सुने।

किसी गृहस्थ के घर में बैठ के भिक्षा न करे क्योंकि वहाँ बुरे संस्कार पड़ जाते हैं।

हाट-बाट-घाट के समीप साधू को कदापि न रहना चाहिये रोगी-शोकी-भोगी-गप्पी-जप्पी-सप्पी इन षट को ब्रह्म विद्या नहीं आती। अत: इन्हें त्याग दे-किसी का दीन न बने-पदार्थों की इच्छा से गृहस्थों की चापलूसी न करे।

वीतराग पुरुषों का संग करें-एकान्त सेवन, शास्त्र विचार करे। गुणग्राही बने-मस्त रहे। शोक मोह को पास न आने दें। विशोकावस्था में मग्न रहे-रागद्वेष को समूल नष्ट करे। सदा निर्भय रहे।

साधू को वेगर्ज-वेफर्ज-बेमर्ज रहना चाहिये। सुख दुख दोनों में प्रसन्न रहना। कष्ट आने पर धैर्य रखना क्योंकि अंत समय अत्यंत कष्ट होता है और प्राणांत समय कोई न कोई निमित्ति अवश्य होगा। इसलिये दुख में सावधान रहना। द्रव्य संग्रह न करे। अपने नाम से ग्रंथ न बनावे।

गुणों का फल, वैराग्य उपदेश—

रजो गुण तमो गुण का त्याग करे। सतो गुण की वृद्धी करे क्योंकि तमो गुण के त्याग से मन की कठोरता दूर होती है और रजोगुण के त्याग से मन की चंचलता दूर होती है तथा सतोगुण

से मन सूक्ष्म होता है। इससे इसी को ग्रहण करे दैवी सम्पत्ति का ग्रहण और आसुरी संपत्ती का त्याग करे।

विद्या सतां मान मदाद् नाशंक,
केषांचि देतन्मदमान कारणं।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये
कामातुराणामति काम कारणम्।

सुख लेना चाहो तो चौपारों का रहना छोड़ो। एकांत सेवन का अभ्यास डालो तथा उदासीन रहो। पूरा सुख लेना चाहो तो एक महात्मा की बात दूसरे से न कहो। छोटे लड़कों से अलग रहा करो, इनसे प्रेम करने से पुरुष पतित हो जाता है। अच्छा-भोजन अच्छा कपड़ा पहनने के लिये साधू हुये तो कुछ तारीफ नहीं। ये पदार्थ तो घर में भी मिल सकते थे; जिसके लिये साधू हुये उसका ख्याल रखना चाहिये। संसार-सागर से पार होने के लिये साधू हुये न कि पदार्थों के लिये।

कुटी बाँध के कभी न रहे, एक जगह कुछ काल रहे। वहाँ से चित्त उचटा दूसरी जगह आसन बदल दिया। ऐसे ही आसन बदलता रहे और देहात में रहे।

इन्द्रियों को एक ओर से मोड़े और दूसरी ओर जोड़े अर्थात इन्द्रियों को विषयों से हटावे और ईश्वर की ओर जोड़े।

जो युक्ति युक्त हित की बात बालक भी कहे तो उसे मान ले अन्य की ग्रहण न करे।

किसी एक के खूँटे में न बँधना चाहिये जन समुदाय से अलग रहे।

शास्त्र से मित्रता—भारत
खण्ड जन्म का कर्त्तव्य-
ईश्वराधन विष्णु सहस्त्र
नाम पाठ; गुप्त रीति से
अपना काम करना ।

शास्त्र ही अपना परम मित्र है। उसमें परम श्रद्धा रक्खे तथा हरहाई गौ का स्वभाव रखना-जैसे हरहाई गौ चार खेतों से अपना पेट भर लेती है तैसे तुम भी अनेक संतो के उपदेश से अपनी पूर्ती कर लो।

जिस-जिस स्थान में अपने गुरु के साथ जाते थे उन-उन स्थानों में जाना छोड़ दो। जहाँ जावोगे दो रोटी मिलेंगी फिर क्यों किसी से प्रीति जोड़े। विराग शून्य पुरुष चारों वेदों का वक्ता भी हो तो भी कुछ नहीं। इस भारत खण्ड की भूमि में मनुष्य शरीर पाकर इसे सफल करना चाहिये जिसकी देवता भी इच्छा करते हैं। प्रथम तो मनुष्य शरीर मिलना कठिन, फिर सबसे उत्तम ब्राह्मण शरीर और भी दुर्लभ ऐसे उत्तम शरीर को पाकर मोक्ष संपादन करना चाहिये।

प्रातःकाल उठ के प्रथम ईश्वर का आराधन करे, पश्चात् स्नानादि से निवृत्त हो के पाठ करें, तदनंतर भिक्षा करे फिर किंचित विश्रम करके शास्त्र चिन्तन करे फिर सायंकाल की क्रिया से निवृत्ते हो के निद्रा आने पर्यन्त भजन करें।

विष्णु सहस्त्र नाम कंठस्थ कर लो; उसका त्रिकाल पाठ करो और शंकरभाष्यानुसार भाषानुवाद याद कर लो।

गुप्त रीति से अपना सब काम किया करो जिससे किसी को प्रगट न हो। प्रगट होने से आनन्द जाता रहता है और पुण्य भी बंट जाता है जब तक अपने कार्य से निवृत्त न हो तब तक चलने का संकल्प न करे। अपने आप मन बँध जायगा।

मन को खाली नहीं रखना —गृहस्थ के धन से यात्रादि निषेद; संसार से पार होने को मंत्र रूप नौका-अर्थ जान के मंत्र जपना।

इस मन को कभी खाली न रहने दे। इसे छुट्टी न दे। किसी कार्य में लगाये रहे। यही भूत तो नचाये फिरता है।

विरक्त को गृहस्थों से धन ले के दान पुण्य तीर्थ यात्रादि कोई कार्य नहीं करना चाहिये। क्योंकि विरक्त को सिवाय कष्ट के और कोई लाभ नहीं। क्योंकि "जिसका चुन्न उसका पुण्य"- केवल "कोयले की दलाली में हाथ काले।"

जैसे नौका से समुद्र पार होते हैं, ऐसे संसार समुद्र से पार होने को किसी मंत्र को जो अपने को प्रिय हो नौका बना लो। उसका ६ कोट, ६ लक्ष, ६ सहस्र संख्या जप करना। इतना जप करके अपने अंतःकरण की दशा देखनी चाहिये।

कोई भी मंत्र हो बिना अर्थ जाने जप करने से फलदायक नहीं होता। इससे मंत्र का अर्थ तथा ध्यान। जान के ही जप करना।

भिक्षा से निर्वाह, सेवा किसी से न कराना- घुमक्कड़ों से दूर रहना।

भिक्षा से शरीर का निर्वाह करना; परन्तु भिक्षा में भी ये नियम रखना कि भिक्षा मांग के लाए उस समय यदि कोई अतिथि आ जाय तो भिक्षा में से आधा अतिथि को दे देना; या समग्र दे देना और आप उस दिन उपवास करना। अपनी

सेवा किसी से न कराना। अपना शारीरिक कार्य अपने आप करना। अच्छे वस्त्र रखने से लोग कष्ट भी देते हैं और वस्त्र भी हर लेते हैं। इससे साधू ऐसा वस्त्र रक्खे कि जो अपना काम तो पूरा दे और चाहे जहाँ छोड़ दे, कोई भी न छुवे।

कुछ समय पाठ में, कुछ विचार में और कुछ ईश्वर चिन्तन में तथा गुण-गुण के विचार में बिताना। कुछ समय कथा सुनने में, कुछ समय लिखने में, कुछ शरीर यात्रा में ऐसे सब समय बिताना। परन्तु समय व्यर्थ नहीं खोना किन्तु शुभ विचार तथा शुभ कार्यमें ही व्यतीत करना चाहिये।

पुजक्कड़ों से सदा दूर रहना। किसी की प्रारब्ध में क्यों शामिल होना। अपने पुरुषार्थ से अपने शरीर का निर्वाह करना।

भिक्षा अपने आसन पर करना-विचार तत्काल फल दायक है; एक ही ग्रन्थ को बार-बार विचारना-शास्त्र आज्ञा पालन; द्वेष निषेध।

साधू ऐसा सामान कभी न रक्खे जिसकी चिन्ता करनी पड़े। भिक्षा से अपना निर्वाह करे। भिक्षा बिना और किसी पदार्थ की याचना कभी न करे। क्योंकि पदार्थों की याचना ही पुरुष को दीन बनाती है। भिक्षा ग्राम से ले के अपने आसन पर एकांत में पाना चाहिये। जप तो कालान्तर में फल देता है और विचार तत्काल फल देता है। इससे शास्त्र का खूब विचार करना।

एक ग्रन्थ को इष्ट कर लो। उसी का बारम्बार विचार करो। उसी से सब कुछ होगा। बहुत ग्रन्थ देखने से लाभ नहीं।

जैसे "एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय" बीत राग पुरुषों का संग करना। सज्जन वो हैं जो हित के वचन सुनावे, जिनको सुन के चित्त शाँति हो।

ग्रंथ को बहुत धीरे-धीरे विचार के साथ पढ़ना। जब कोई पंक्ति अपने चित्त को आनन्द दायक जान पड़े तब पुस्तक से दृष्टि हटा के उस पंक्ति का बारंबार विचार करना; यह नहीं कि आंधी की न्याई अंधाधुन्ध पढ़ते ही चले गये, कुछ विचार किया न किया।

ग्रन्थ को आरम्भ करके ये विचार नहीं करना कि जल्दी समाप्त हो; किन्तु शनैः-शनैः ग्रन्थ को विचारना और धारण भी करना। अर्थ का खूब विचार करना तथा भगवन्नामों का भी खूब अर्थ विचारना।

जहाँ तक हो सके अपनी सामर्थ्य भर शास्त्र की आज्ञा पालन करना।

एक स्थान पर चाहे जितने दिन पड़े रहे किसी को न अखरे। उसकी युक्ति ये है कि किसी से सेवा न करावे। शारीरिक कार्य सब अपने आप कर ले। किसी से राग द्वेष न होने पावे।

वैराग्य ही से ज्ञान प्राप्त होता है—आचार्य में ईश्वर बुद्धि - पुरुषार्थ करना।

साधुओं से अधिक मेल की रीति न डालो। क्योंकि पहले प्रीति पीछे दुखदायी हो जाती है। द्वेष भाव किसी से न रखना। भीतर से सबको भगवत् रूप जानना। बिना वैराग्य के अनुभव ज्ञान नहीं होता। रागी पुरुष को कहीं अनुभव होता है?

जिसका अंतिम जन्म होता है उसी का चित्त पदार्थों से हटता है। नहीं तो थोड़ी सी चीज से जीभ में पानी भर आता है। फिर अधिक वस्तु से क्या कहना है। एक ही रस रहेगा, दोनों नहीं रह सकते। और एक ही चमक रहेगी चाहे इसे (शरीर को) चमका लो चाहे उसे (परमार्थ को)। शरीर की चमक खान-पान से और परमार्थ की चमक ज्ञान वैराग्य से।

जितना समय अधिक होगा उतना ही बोध उच्च होगा।

जहाँ सत्कार से भिक्षा मिले वहाँ अधिक नहीं जाना। क्योंकि शरीर सुख के लिये ही तो रोग होता है, सो थोड़ा अपना कष्ट ही सह ले। बहुत ग्रंथों के देखने में क्या है, काम तो धारण शक्ती से पाना है। आचार्य में जब तक ईश्वर बुद्धि नहीं होती तब तक विद्या तथा ब्रह्म-विद्या फलदायक नहीं होती।

किसी ऐश्वर्य वाले को देख के जहाँ मन नीचा पड़ा, मानो डूब गया। ये शरीर कौवों और कुत्तों का भोजन है इसे अच्छे-अच्छे पदार्थों से क्या पालना।

पुरुषार्थ करो पुरुषार्थ हीसे इसी जन्म में सब कुछ हो सकता है। और पूर्व जन्म के पुण्य पुरुषार्थ ही से तो बने हैं।

सुवर्ण के पात्र में भोजन करने से तृप्ति होती है, और पत्ते में भोजन करने से भी तृप्ति होती है, क्षुधा निवृत्ति रूप तृप्ति दोनों में समान है। तृप्ती से प्रयोजन है, कुछ पात्र से प्रयोजन नहीं। ऐसे ही अपने बोध के लिये थोड़े महावाक्य ही बहुत हैं।

किसी से घर छोड़ने को न कहना, जिसे वैराग्य होगा उससे आप ही न रहा जायगा।

पूर्व ऋषियों के पास सिंह, व्याघ्रादि हिंसक जीव आते थे इसका कारण यह था कि उन ऋषियों में अहिंसा व्रत पूर्ण था।

वैसा ही अभी पुरुषार्थ करने से हो सकता है यदि अहिंसा धर्म यथावत् पालन हो

अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा

पदार्थों से जिसका चित्त उपराम हो उसका तो कहना ही क्या है, कोई ऐसा हो तो गोरस इक्षुरस दोनों का त्याग अर्थात् गोरस, घृत, दुग्धादि अरु इक्षुरस सक्कर गुड़ आदि का त्याग।

भोजन न इतना कम करो कि शरीर निर्बल हो और न इतना अधिक करो कि बैठा भी न जाय। रात्री के आदि अंत में जागरण करे। मध्य के प्रहर में शयन करे, अति न्यून तथा अति अधिक शयन करने से रोग होता है। अति निन्दा तमोगुण का मुख्य लक्षण है। दिन में सोना वैद्यक से भी निषिद्ध है।

विचरने में गंगा तीर में
सुख रहता है—अहिंसा
व्रत धारण करना।

विचरने वाले को गंगातीर में आराम मिलता है। विचरे तो गंगा किनारे कहीं पड़ा रहे। चातुर्मास कहीं मठ आदि में बिता दिया। एक कंथा एक पात्र एक पुस्तक फिर मन आवे तो एक मील आधा मील चले। अधिक चलने से तो विचार कुछ नहीं होता शरीर थक जाता है। छै ऋतु हैं सो दो-दो मास एक आसन पर बिता दिया। इतना ढँढ़ ले जब एक जगह से चित्त उचटा तब दूसरी जगह आसन बदल दिया। जब तक अपने कार्य में विक्षेप न हो तब तक तो कहीं पड़ा रहे; जब विक्षेप मालूम हो तब वहाँ से चल दे

सूक्ष्म राग जो भीतर होता है वो पुरुष को दुःख देता है। भोजन वस्त्र; दो ही के लिये राग होता है। और तो मेल से कोई

काम नहीं, इन दोनों को अपने आधीन कर ले फिर किसी से मेल करने का काम ही न रहेगा।

ये रंग चाहो तो संग किसी के न रहना, हाँ कोई सत्पुरुष मिले तो उसका वाक्य जो अपने हित का हो सो धारण कर लेना। सदैव साथ उसका भी न करना; क्योंकि अच्छी वार्ता तो कभी-कभी होती है, प्राकृत वार्ता ही अधिक होती है।

अधिक पत्रा पढ़ने से
लाभ नहीं किन्तु लाभ
मनन से है—धैर्य रखना,
चिन्ता नहीं करना, ईश्वर
में दृढ़ विश्वास रखना।

अधिक पन्ना पढ़ने से भी लाभ नहीं। पढ़े थोड़ा गुने बहुत तो ठीक होता है; उसी का नाम मनन है।

चिन्ता करना छोड़ दो। यह न समझो कि इतना काम हमने कर लिया इतना बाकी है। विष्णु सहस्रनाम का तीन बार पाठ किया करो। उसकी तो चिन्ता रक्खो। वो तो छूटने न पावे, और चिन्ता कभी किसी काम की न करना।

घबराने की कोई बात नहीं है। लगे रहो इसी शरीर में हमारा कार्य सिद्ध होगा। कदाचित ये शरीर छूट गया तो दूसरे शरीर में उठके यही काम फिर करेंगे। परमात्मा के भक्तों की दुर्गति नहीं होती ऐसा दृढ़ विश्वास रखो।

ईश्वर को एकदेशी मान के कभी आराधन मत करो। किन्तु सर्वदेशी परिपूर्ण सच्चिदानन्द मान के आराधन करो। जिसकी सत्ता से प्राणिमात्र चेष्टा कर रहे हैं, जिसकी सत्त से वायु चलता है, नक्षत्र चमक रहे हैं, सूर्य जगत् को प्रकाश

करते हैं और जिसकी सत्ता से ये सब शरीर रूपी पुतलियाँ नाच रही हैं उस भगवान को अपना आत्मा मान के आराधन करो।

श्रीकृष्ण को अपना गुरु मान के गीता का विचार करना—प्रेम पूर्वक भगवद्-आराधन, आश्रमाभिमान राहित सदा जगत में ब्रह्मभाव रखना।

भगवान को ही अपना गुरु मानो जो कुछ भूलो उन्हीं से पूछो भगवान ने अपना तेज गीता में स्थापन किया है इससे भगवद् वाक्यों को खूब विचार करो। पढ़ते समय यह न समझो कि भगवान अर्जुन को कह रहे हैं। किन्तु अर्जुन अपने को ही जानो और ये समझो कि उपदेश श्रीकृष्ण भगवान हम ही को कर रहे हैं। उसको धारण करो। भगवद्-आज्ञा पालन का उद्योग करो।

जब शास्त्र की कोई बात समझ में आती है तब कैसा आनन्द होता है। भगवान सदा भक्तों की रक्षा करते हैं।

प्रेम पूर्वक भगवान का स्मरण करो देखो कैसा सुख मिलता है। भगवान के नामों का आराधन किया करो।

अपने को किसी आश्रम का अभिमानी न मानो, किन्तु बोध रूप जानो। अपने स्वरूप में सदा मग्न रहो।

ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोहमिति भावयेत्।
अशक्नुवन् भावयुतं वाक्य मेतत्सदाभ्यसेत्॥

इसी का अभ्यास करते रहो।

सब सन्तों के वाक्य टांक लिये, उसी की गुदड़ी ओढ़ी ये गुदड़ी आनन्ददायक है।

भगवद्वाक्यों का आश्रय ले, जो दोनों लोकों में सुखदाई है। चित्त को प्रसन्नता पूर्वक इस लोक में सुख देने वाले हैं और शाँति द्वारा मोक्ष देने वाले हैं।

यदि एक का होना चाहो तो परमात्मा जो सुख रूप है तथा सत् रूप है तथा परिपूर्ण सच्चिदानन्द हैं उसी एक के हो के रहो अथवा उनके भक्त भी जो कि परमात्मा रूप हैं उनसे प्रेम रक्खो, क्योंकि ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप होता हैं।

जब कोई अयोग्य बात
कहने पर बुरा न मालूम
हो तब जानो मन ठीक
है—शरीर को तुच्छ
जानो, मन शुद्धि से
ज्ञान प्राप्ति, मन में सदा
ईश्वर-स्मरण।

तब जानो कि अब हमारा मन ठीक है जब कोई अनुचित बात भी कहे और उसको सुनके बुरा न मालूम हो। यावत् ऐसा न हो तावत् मन को अन्यत्र लगा दे। उन बातों को सुने ही नहीं तुम अपने मन का संन्यास रक्खो शरीर को प्रारब्ध पर छोड़ दो जैसा भोग होगा वैसा अवश्य प्राप्त होगा।

शरीर को बिलकुल तुच्छ जाने और समझे कि कुछ है ही नहीं, तब भोगों से रुचि हटती है, मृत्यु का सदा भय मानता रहे।

कौन आया कौन नहीं आया ये जो भीतर सूक्ष्म कल्पना है यही विस्तृत हो जाती हैं। यही दुःखदायी होती है। ये कल्पना ही न उठे कल्याणार्थी पुरुष का यही कर्तव्य है।

भगवद्रूप जान के प्रीति तो सब ही के साथ रखनी चाहिये। फक्कड़ों को क्या जहाँ पड़े तहाँ पड़े हैं। समय ही तो व्यतीत करना है।

अंतःकरण की शुद्धि से ज्ञान प्राप्ति होती है और अंतःकरण की शुद्धि भगवद्आराधन से होती है। प्रेम दो ही हैं एक आत्मा का एक अनात्मा का। चाहे आत्मा में प्रेम करो चाहे अनात्मा में। प्रेम तो एक ही में होगा।

जब मन बुरे संकल्प करे तब उसे यों समझावे कि हे मन तुझे धिक्कार है जो तू विषयों का स्मरण करता है और ईश्वर को भूलता है। तुझे नरकों का स्मरण नहीं है? तू ईश्वर को भूलेगा तो तेरे लिये वही कूकर शूकर की योनि फिर तैयार है।

मन में किसी की भी याद न आवे जब याद आवे तब भगवान की ही। तब जानो हमारा मन ठीक है। जैसे वायु चलता है तब सुगन्ध दुर्गन्धि दोनों पर पड़ता है परन्तु स्पर्श किसी से नहीं करता तैसे ही संसार में विचरे और किसी के गुण दोष स्पर्श न करे।

ग्रंथों को दूसरों के सुनाने के अर्थ नहीं पढ़ना—श्रेष्ठों का शास्त्रोक्त आचरण ग्रहण करना; कार्पण्य दोषो पहतः इस श्लोक का निरंतर जप।

गीतादि ग्रंथों को इस निमित्त कंठ न करना कि किसी को

सुनावेंगे। यदि इसी निमित्त कंठ किया तो व्यर्थ है। किन्तु अपने कल्याणार्थ मननोपयोगी जान के कंठ करना।

परमात्मा ही शाश्वत ब्रह्म हैं। सगुण रूप और निर्गुण रूप भी वही हैं। श्रेष्ठ पुरुषों का शास्त्रोक्त आचरण ग्रहण करना और शास्त्र विरुद्ध आचरण कदापि नहीं ग्रहण करना चाहिए।

किसी बाग में फले हुये वृक्ष हैं, उनमें से कुछ फलों को तुम जानते हो। उनको खा के अपनी क्षुधा निवृत्ति कर लो। क्षुधा की निवृति से प्रयोजन है सब फल जानने से प्रयोजन नहीं। तैसे ही शास्त्र में जिन वाक्यों को तुम जानते हो उन्हीं से अपनी तृप्ति कर लो। सब कुछ शास्त्र जानने से प्रयोजन नहीं। साधू को निन्दा स्तुति दोनों में सम रहना। जैसे बालक पैर छू ले तो प्रसन्न नहीं होना और दाढ़ी पकड़ ले तो अप्रसन्न नहीं होना।

लुटिया रखने से क्या विरक्तता घट सकती है? और हँडिया रखने से क्या विरक्तता बढ़ सकती है? दोनों में हर्ष *विषाद* से रहित होना।

कार्पण्यदोषोपहतः स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढ़ चेताः।
यच्छ्रेयस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥
नहिमपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषण मिंद्रियाणां॥
अवाप्य भूमाव सपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

इन मन्त्रों को बारम्बार प्रेम पूर्वक उच्चारण करो फिर देखो श्री कृष्ण भगवान श्याम सुन्दर मनोहर मूर्ति धारण किये सामने दर्शन दिया करेंगे भगवान प्रेम के कारण ही तो अवतार धारण करते हैं।

'परं ब्रह्म परंधाम' ये पारमार्थिक रूप हैं; गंगा तीर में प्रेम से भजन करना।

परं ब्रह्म परंधाम पवित्रं परमं भवान्,
पुरुषं शाश्वतं दिव्य-मादि देवम् जंविभुम्।

ये भगवान का पारमार्थिक रूप है।

यदादित्य गतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलं,
यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धिमामकम्।

ये भी भगवान का पारमार्थिक रूप है।

गीता में क्या कहीं भी ये कहा है कि किसी से द्वेष करो? देखो परम गुरू क्या कहते हैं "यो मां पश्यन्ति सर्वत्र सर्वंचमपि पश्यति, तस्याहं न प्रणश्यामि" सच में न प्रणश्यति यही भगवान का पारमार्थिक रूप है और दूसरा लीलाविग्रहरूप है।

विष्णु सहस्त्रनाम में सब नाम श्रीकृष्ण ही के हैं। अपने को अर्जुन मानो अरु ये समझो कि ये उपदेश श्रीकृष्ण हम ही को कर रहे हैं। उसे धारण करो केवल पाठ से काम नहीं चलेगा उन वचनों के अर्थ को हृदय में धारण करो। प्रेमपूर्वक इसी भगवद् गीता को विचारो। सब कुछ इसी में मिलेगा।

श्री गंगा जी के तीर में कूदते-फाँदते श्री कृष्ण भगवान के गुणानुवाद गाते प्रेमपूवक अश्रुधारा बहती हों जिन आश्रुवों से धुलकर अंतःकरण निर्मल हो। श्री कृष्ण भगवान के गुणानुवाद गाय-गाय मग्न हो तब देखो फिर श्याम सुन्दर मूर्ति आगे खड़ी है। गंगा जी के किनारे जहाँ-तहाँ पड़े रहे। फाटी-फूटी कथरी हो।

अब संग किसी का न करना। किसी की पूंछ न बनना। गले में पट्टा भी न डालना अर्थात् किसी के पीछे-पीछे मत घूमना। किसी

सत्पुरुष की बात जो ग्रहण करने योग्य हुई तो ग्रहण करली फिर अलग हो गये।

यह शरीर अग्नि जलादि का भक्ष्य है—भिक्षा वृत्ति-निष्काम; विष्णु सहस्त्रनाम पाठ, द्रव्य त्याग तथा उसके अभिमान का त्याग; देखा-देखी अपना व्यवहार नहीं बिगाड़ना।

यह शरीर कुत्तों, कौवों, जल या दीमक का भोजन है। इसमें भीतर क्या है, विष्ठा मूत्र रक्तादि भरे हैं। ये ऊपर की कलई है इसमें क्या प्रेम करना ?

समुद्र अरु फेन क्या भिन्न-भिन्न है ? वास्तव में उसी के अंग हैं। तैसे अपने स्वरूप से कोई भिन्न नहीं। अपना अंग ही है। फिर राग-द्वेष किससे करे ? किसी से अपना व्यवहार ही न मिलाया।

भिक्षा वृत्ति रखने से किसी से मेल ही क्या होगा ? जो बात जहाँ सुनी वहीं छोड़ दी। यहाँ की वहाँ अरु वहाँ की यहाँ ये नहीं करना। ये बड़ा बुरा स्वभाव है। जब स्वभाव पड़ जाता है तब तो छूटना कठिन हो जाता है।

पदार्थों में प्रेम होगा तो भगवान में नहीं होगा और भगवान में होगा तो पदार्थों में न होगा। भोग दो प्रकार के होते हैं—एक भुज्यमान दूसरा चिंत्यमान। ये दोनों ही त्यागने योग्य हैं। विष्णु सहस्त्रनाम के पाठ भगवत्प्रीत्यर्थ करना; किसी कामना से नहीं करना।

भीतर से त्याग हो और बाहर से त्याग की दशा हो; किसी इन्द्रिय के अभाव करने से क्या प्रयोजन है। उसका नाम तो मनोजय है। जैसे किसी को फाँसी का हुक्म हो फिर उसके आगे छप्पन प्रकार के भोजन रक्खे जायँ तो उसका चित्त भोग में न जायगा क्योंकि उसका मन तो फाँसी मय हो रहा है।

द्रव्य लेना त्यागे। और त्याग का अभिमान भी त्यागे कि द्रव्य लेना तो हमने त्याग दिया अब कोई विषय हमारा क्या करेगा अथवा द्रव्य, विषयों का मूल है सो हमने त्याग ही दिया अब विषय प्राप्ति कैसे होगी।

किसी की देखा-देखी अपने खान-पान का व्यवहार नहीं बिगाड़ना; जैसे जैसे मन ग्लानि से त्याग करता जाय वैसा करना।

पदार्थों से प्रेम होगा तो भगवान से नहीं और भगवान से प्रेम होगा तो पदार्थों से नहीं होगा।

दास-बोध

साधू को खोजना उसी से परमार्थ लाभ होगा; राजा से धन प्राप्ति; साधुसंग से ईश्वर प्राप्ती; जो बातें भगवत्को प्रिय हों सो अपने को भी प्रिय होनी चाहिये।

पृथ्वी में बहुत मनुष्य है उनमें सज्जन भी होते हैं परन्तु साधू को बिना साधू के कौन पहचान सकता है। इससे गृहस्थी को छोड़ के फिर साधू की ही खोज करनी चाहिये और घूम-फिर के साधू को प्राप्त करना, अनेक साधुओं से मिलना। उन्हीं में कोई अनुभवी भी मिल जाते हैं; क्योंकि बिना अनुभव के सब व्यर्थ है; चाहे व्यवहार हो; चाहे परमार्थ। जिसे अनुभव ज्ञान है, वही समर्थ है। जो रातदिन परमार्थ का विचार करता है उसी से परलोक का सच्चा स्वार्थ हो सकता है।

जैसे गुप्त धन एक प्रकार के विशेष अंजन लगाने से देख पड़ता है तैसे ही संत-समागम रूप अंजन लगाने से गुप्त धन रूप परमात्मा की प्राप्ती होती है।

जैसे राजा के पास रहने से धन सहज में ही प्राप्त होता है वैसे ही संतों के पास रहने से परमात्मा मिलता है। परमार्थ के सब साधनों में श्रवण सर्वोपरि है। जो श्रवण नहीं करता वह परमार्थ कैसे पा सकता है। श्रवण बिना पूर्व का किया हुआ सब व्यर्थ हो जाता है। इससे मन लगा के श्रवण करके नित्य नियमों का पालन कर संसार-सागर से पार होना चाहिये।

विरक्तों को चाहिये कि विरक्तों का पता लगा कर साधुओं को पहिचाने और उन सज्जनों का संग करें। क्योंकि अनुभवी

संतों का समागम परमेश्वर से मित्रता करने का उपाय है। जो बातें भगवान को प्रिय हों उनके अनुसार आचरण करना चाहिये। भक्ति-भाव,भजन, अध्यात्म निरूपण, भगवत्कथा, भगवद्गुण, कीर्तन और प्रेमी भक्तों का गान ये बातें परमेश्वर को प्रिय हैं,यही बातें हमे भी करनी चाहिये और हमें भी यही अच्छी लगनी चाहिये। एकांत वास भी उत्तम है। इससे स्वस्थ चित्त से उसके भगवत्सम्बन्धी चर्चा करनी चाहिये। इससे हमारा और भगवान का मन मिल जायगा तब दोनों की मित्रता सहज में हो जायगी। परमात्मा से मैत्री प्राप्त करने में अपने सुखों को पहले तिलांजलि दे देनी चाहिये। जो संसार में सुख मानते हैं वे मूर्ख हैं। क्योंकि संसार दुख के समान कोई दुःख नहीं।

अनन्य भाव से शरीर प्राण मन अर्पण करना; उपासना एक बड़ा आश्रय है; उपासना बिना किंचित्कार्य सिद्धि नहीं हो सकती, भक्ति उपासना का प्राण है; और योग उपासना का शरीर है; प्रीति तीन प्रकार की होती है।

अनन्य भाव से जीव, प्राण तथा शरीर तक उसे अर्पण कर देना चाहिये। उपासना एक बड़ा भारी आश्रय है। उपासना बिना काम नहीं चल सकता। चाहे जितना उपाय किया जाय परन्तु सफलता नहीं होती। जिसे समर्थ का आश्रय नहीं होता उसे

कोई भी अपने आधीन कर सकता है। इससे उठते-बैठते सदा भजन करना। भजन के साधन रूप अभ्यास से परमात्मा की प्राप्ति होती है। दास कहता है ये विश्वास रखना।

भक्ति उपासना का प्राण और योग उपासना का शरीर है। चित्त में भगवान के प्रति अनुराग उत्पन्न होने से भक्त भगवान की समीपता लाभ करता है। उसे भक्ति कहते हैं। शारीरिक तथा मानसिक क्रियानुष्ठान से चित्त शाँत हो के आत्म स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है उसे योग कहते हैं। इससे उपासना की उन्नति और पूर्णता प्राप्त्यर्थ प्राण रूपी भक्ति और शरीर रूप योग की आवश्यकता है। जैसे शरीर में प्राण शक्ति के बिना शरीर का जीना बढ़ना, असंभव है; वैसे ही उपासना के साथ भक्ति न रहने से साधक की उपासना मार्ग में स्थिति अरु उन्नति नहीं हो सकती। प्रीति तीन प्रकार की होती है—स्नेह, प्रेम और श्रद्धा—उसमें स्नेह, स्त्री पुत्रादि में, प्रेम बराबर वालों में और श्रद्धा गुरु तथा माता पिता में। परन्तु तीनों प्रकार की प्रीति लौकिक होने से क्षणभंगुर है और वही प्रीति संसार से उठके आनन्दमय भगवान में लगती है तब अलौकिक कहाती है।

भक्ति तीन प्रकार की होती है वैधी, रागात्मिका और परा; रजोगुण निवृत्ती बिना विषय वासना नहीं छूटती; सत्यगुण से भक्ती-ज्ञान प्राप्त होता है; ज्ञान होने पर भी उपासना का त्याग नहीं करना; सगुण भजन छोड़ने से हानि

भक्ति तीन प्रकार की होती है, वैधी, रागात्मिका, परा। वैधी

में अर्चन बन्दन, कीर्तनादि विधि से भगवद्भक्ति करना; इससे भगवान में प्रेम का अभ्यास होता है। रागात्मिका में भगवान के साथ प्रेम बढ़ता है। जैसे विषयी जन विषय में आसक्त हो के उसी में निमग्न होते हैं वैसे संसार से प्रेम हटा कर भगवान में प्रेम करना उसी प्रेम को तैल धारा वत् निरन्तर अविछिन्न रूप से करना उसे परा भक्ति कहते हैं।

रजो गुण के दूर किये बिना विषय वासना नहीं छूटती। उपाय केवल भगवद्भक्ति ही है। सतोगुण का मुख्य लक्षण निष्काम हो के परमात्मा का भजन करना।

सतोगुण से भगवान की भक्ति और ज्ञान की प्राप्ति होती है। जो ज्ञाता लोग निर्गुण का ज्ञान हो जाने पर सगुण की ओर से ध्यान हटा लेते हैं वे दोनों ओर से जाते हैं। उन ज्ञाताओं में वस्तुतः न भक्ति ही होती है और न ज्ञान ही होता है। केवल अभिमान ही अभिमान बीच में आ जाता है। अतएव जप ध्यानादि कभी भी न छोड़ना चाहिये।

जो सगुण भजन छोड़ देता है वह चाहे ज्ञानी हो, तो भी उसे यश नहीं मिलता। इससे सगुण भजन कदापि न छोड़ना चाहिये, और नित्य नियम को कभी न छोड़ना चाहिये। सकाम भजन से फल मिलता है और निष्काम भजन से भगवान मिलता है।

भक्ति उपासना का प्राण और योग उपासना का शरीर है।

स्वरूप लक्षण

जो सब में सार वस्तु है, सत्य है, जो नित्य निरन्तर बना रहता है वही भगवान् का मुख्य स्वरूप है। उसी को स्वरूप कहते हैं। उसका ज्ञान प्राप्त करने के अर्थ उसमें नाम और रूप की कल्पना की जाती है। वास्तव में वह स्वरूप नाम रूपातीत है।

जो दृष्टि से देख पड़ता है वह स्वरूप नहीं है। क्योंकि दृष्टि पड़ने वाला पदार्थ नश्वर है श्रुति-यद्दष्टं तन्नष्टं-इससे स्वरूप अविनाशी है। अनुभव का अर्थ है अनन्य होना और अनन्य नाम जहाँ अन्य नहीं, वही अनन्य जैसे आत्म-निवेदन।

जो जिसको भजते हैं वो उसी लोक को जाते हैं। निर्गुण को भजने से निर्गुण होते हैं।

निर्गुण का भजन यह है कि निर्गुण में अनन्य हो कर रहना। अनन्य होने से अवश्य धन्यता प्राप्त होती है। सर्व शुभ पुण्य कर्मों का फल यही है, कि परमात्मा को पहचानना और यह विचार करना कि हम कौन हैं। निराकार परमात्मा का अनुभव करने से देहाभिमान नहीं रहता और यह निश्चय हो जाता है कि हम वही हैं (तंयथा यथोपासते ते तदेव भवति-आत्मेतितू-पगच्छन्ति ग्राहयंति च)

अनन्य भक्त को भगवान स्वयं बुद्धि देता है "ददामि बुद्धि योग तं तेन मामुपयांतिते—" जब स्वयं यह विश्वास हो जाय कि पापों का खंडन हो गया, जन्म यातना मिट गई, तब जानो कि अब भलाई है। जब जानो कि हम परमेश्वर को पहचान लिया,

हम कौन हैं सो भी जान लिया या आत्म-निवेदन हो गया तब जानो कि अब ठीक है।

विश्वास ही परमार्थ का मूल कारण है; स्वप्न-बंधन तोड़ने के लिये दूसरे साधन की आवश्यकता नहीं किन्तु जाग्रति ही उसका एक उपाय है उसी प्रकार जीव को संसार से छूटने के लिये विवेक बिना दूसरा उपाय नहीं।

जब मालूम हो जाय कि ब्रह्मांड किसने रचा, और किस पदार्थ का रचा, मुख्य कर्ता कौन है तब जानो कि अब ठीक है। इतना जानने में यदि शंका रही तो जानो कि अब तक किया हुआ सारा परमार्थ व्यर्थ गया और बिना विश्वास वह पुरुष संशय ही में डूबा रहा। ये परमार्थ का मर्म है। इसमें यदि कोई असत्य कहता हो तो वह अधम है। इतना न जानने से परमात्मा का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। इसमें कुछ भी असत्य नहीं है। स्वप्न बंधन तोड़ने के अर्थ दूसरे साधनों की आवश्यकता नहीं केवल जाग्रति ही एक उपाय है; वैसे ही जीव जो संकल्प से बँधा हुआ है उससे छूटने का उपाय विवेक के बिना अन्य नहीं, क्योंकि विवेक के बिना जो अन्य उपाय किये जायँगे सो सब व्यर्थ होंगे। विवेक से देखने पर तो सब प्राणी जीव स्वयं आत्मा ही है।

एकान्त सेवन

एकान्त में विवेक उत्पन्न होता है—अपने अवगुण ही गुण रूप मालूम होना ही मुख्य अवगुण है, निरर्थक विषयों का त्याग और आवश्यक पदार्थ का ग्रहण इसी का नाम मुख्य त्याग है, विवेक युक्त वैराग्य ही मुख्य वैराग्य है; प्रवृत्ति अधोमुख चलती है और निवृत्ति ऊर्ध्व मुख चलती है, अच्छे-अच्छे उपदेशों को पढ़ना अरु बारम्बार मनन करना।

एकान्त में विवेक उत्पन्न होता है और यत्न करने का उपाय मिलता है। एकांत में विचारशक्ति तथा तर्कशक्ति सारे ब्रह्मांड में प्रसारित होती है। एकांत में विस्मृत कार्य तथा विषय स्मरण आता है। एकान्त में बैठ के अंतरात्मा के साथ कुछ न कुछ विचार करना चाहिये। जिसे एकांत प्रिय लगा उसका कार्य सबसे पहले सिद्ध हो जाता है-बिना एकान्त के, महत्व नहीं मिल सकता। अपने अवगुण ही गुण रूप मालूम होना सब अवगुणों में श्रेष्ठ अवगुण है। इससे सदैव अपने अवगुण देखना और दूसरे के गुण देखना यही कल्याणकारी है।

निरर्थक विषयों का त्याग करके आवश्यक पदार्थों का ही ग्रहण करना विषय त्याग का मुख्य लक्षण है।

वास्तव में विवेकयुक्त वैराग्य ही पक्का वैराग्य है केवल वैराग्य या केवल शब्द ज्ञान से काम नहीं चलता। अतः विवेक वैराग्य दोनों होना महाभाग्य है। प्रवृत्ति अधो मुख चलती है। और निवृत्ति ऊर्ध्व मुख चलती है। निवृत्ति से सुख होता है।

किन-किन लोगों को राजी रक्खा और किनकिन का मान भंग किया, इसकी क्षण-क्षण पर परीक्षा अरु ख्याल रखते रहना चाहिये।

प्रथम तो निस्पृह:ता रखना नहीं, यदि रखी तो छोड़ना नहीं और यदि छोड़ी तो पहचान वालों में घूमना नहीं।

अच्छे अच्छे उपदेशों को बार बार पढ़ना और उसका मनन करना और उसके अनुसार नित्य यत्न करना। तब वही स्वभाव बन जायगा फिर इससे अवश्य लाभ होगा। केवल एक बार पढ़ने से कोई उपदेश शाँतिदायी नहीं हो सकता जब तक कि वह व्यवहार में न लाया जाय।

ऋषि प्रणीत सनातन धर्म के एक-एक अंग में मुक्ति देने की शक्ति है; विधिवत् दान न करने से अहंकार और विधिवत् तप न करने से क्रोध, अविधियुक्त कर्म करने से अभिमान उत्पन्न होता है, श्रवण से मन, मनन से वाणी, निदिध्यासन से कर्म सुधरता है।

ये सत्य है कि ऋषि प्रणीत सनातन धर्म के प्रत्येक अंग में एक ऐसी शक्ति भरी है कि किसी अंग का साधन पूर्ण रीत्यानुसार करने से साधक को मुक्ति प्राप्त होती है। जैसे अग्नि के एक-एक कण में सर्व जगत को दग्ध करने की शक्ति भरी है। परन्तु यह शक्ति यथावद्रूप से प्रयोग न होके तमोगुण की ओर लग जाय तो शक्ति के अयोग्य व्यवहार होने से हानि कारक होती है। वैसे विधिवत् धर्माचरण न करने से साधक में उन्माद रूप निकृष्ट वृत्ति उत्पन्न होती है।

विधिवत दान न करने से अहंकार उत्पन्न होता है। विधिवत् तप न करने से क्रोध की उत्पत्ति होती है। विधिवत्कर्म न करने से अभिमान उत्पन्न होता है। ऐसे ही सब काम विधिवत् न करने से विपरीत फल देते हैं। श्रवण से मन सुधरता है। मनन से वाणी सुधरती है। विदिध्यासन से कर्म सुधरता है। इससे इन तीनों का अभ्यास करना चाहिये।

अपने अवगुण ही गुण रूप मालूम होना ही मुख्य अवगुण है।

वैराग्य से आनंद

हम बड़े-बड़े कष्ट का सामना करते हैं। दुर्गम स्थानों में भी प्रवेश करते हैं; परन्तु मन का उत्साह भंग नहीं होता। किसकी खोज में? आनन्द की।

इस लोक वा परलोक का कार्य बड़े परिश्रम तथा उत्साह से करते हैं कि आनन्द मिलेगा। परन्तु आनन्द तभी मिलता है जब इच्छा की निवृत्ति होती है। जैसे मिठाई की इच्छा है और मिठाई मिल गई। उससे आनन्द मिला जब कि मिठाई की इच्छा निवृत्त हुई, थोड़ी देर को इच्छा न रही संतोष हुआ। तब यही संतोष और इच्छा की निवृत्ति आनन्द का कारण हुआ। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमें भोग वा संसार में भी आनन्द उसी क्षण मिलता है जब हृदय से इच्छा की निवृत्ति होती है। मन भोग की ओर से फिर आता है। हृदय में संतोष उत्पन्न होता है। अतः विचार करने से सुख और आनन्द का वास्तविक कारण वैराग्य और संतोष है।

जिसे विषयों से वैराग्य तथा संतोष नहीं, वही दुःखी और दीन है। उसी मनुष्य की आत्मा जीवात्मा कहाता है। परन्तु जिसका मन संसार से सर्वथा निवृत है और हृदय में सच्चा संतोष है तथा वैराग्य उत्पन्न हुआ है; उसका आत्मा जीवात्मा नहीं किन्तु साक्षात् परमात्मा सच्चिदानंद सुख स्वरूप है।

निष्कामकर्मी का मन विषयों में लिप्त नहीं होता—संतोषी और असंतोषी में भेद।

जो निष्काम कर्म में लगा रहता है उसका मन विषय भोग में लिप्त नहीं होता। उसके हृदय में विषय वासना नहीं आती। उसका

चित्त एकाग्र और निश्छल रहता है। परन्तु जो शरीर से काम नहीं करता और अच्छा-अच्छा भोजन करके बैठा रहता है उसका मन सदैव विषय वासनाओं में दौड़ा करता है। कभी भी शांति नहीं पाता। बिना विषय वासना दूर किये किसी को अपने कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं होता। विषय वासना, फलेच्छा, असंतोष, तृष्णा, ऐसी वस्तु हैं जो मनुष्य को रोगी व निर्बल बना देती हैं इससे जो रोगी और निर्बल हैं उनसे काम की उन्नति की आशा करना व्यर्थ है

संतोष का अर्थ निष्कर्मण्य होना नहीं है, क्योंकि जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक अकर्मण्य होना असंभव है।

संतोषी अरु असंतोषी में भेद इतना ही है कि संतोषी अपने कर्तव्य कर्म को वीरता से करता है और असंतोषी रोगी होके बैठा रहता है। काम दोनों करते हैं। एक का काम उत्तम और दूसरे का निकृष्ट होता है।

असंतोषी और विषयी मनुष्य का काम नहीं के बराबर है अत: सन्तोषी विरक्त योगी ही सच्चे वीर हैं अन्य नहीं। अन्य कर्मण्य होते हुये भी अकर्मण्य हैं। इससे सन्तोष और वैराग्य से बढ़के दूसरा कोई कल्याणप्रद और शान्ति दायी मार्ग नहीं है। जो आलस्य और निष्कर्मण्यता से विरक्त नहीं होता है उसका विषयों से विरक्त होना असम्भव है जो आलस्य पर विजयी नहीं वह विषयों पर विजयी कैसे हो सकता है। जो विद्या अभ्यास नहीं कर सकता वह योगाभ्यास कैसे कर सकता है। जो गीदड़ को देखकर डरता है वो सिंह का शिकार कैसे करेगा। सिंह के शिकार में जैसी फुर्ती, वीरता और चैतन्यता की आवश्यकता है उसी प्रकार विषय रूप सिंह को जीतने के लिये आवश्यकता है। किन्तु सिंह पर विजयी होना सहज है। वह थोड़े ही

परिश्रम और युक्ति से जीता जा सकता है परन्तु विषयों पर विजयी होना बहुत कठिन है। उसको कोई विरला ही जीतता है।

हम अपने ऊपर दूसरों का अधिकार सहन नहीं कर सकते फिर इन्द्रियों का अधिकार अपने ऊपर क्यों होने देते हैं—सुख प्राप्ति का दूसरा उपाय परिश्रम करना

हम अपने ऊपर दूसरों का अधिकार सहन नहीं कर सकते फिर अपनी इन्द्रियों को क्यों अपने ऊपर अधिकार जमाने देते हैं। यही आश्चर्य है। इन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहिये। क्योंकि मूर्ख इन्द्रियों के वश में होकर काम करने से स्वयं लज्जित होते हैं। क्रोधी तनिक में ही तमक उठते हैं, पीछे पछताते हैं इससे मनोविकारों और इन्द्रियों को अपने वश में करना चाहिये।

सुख की प्राप्ति का दूसरा उपाय परिश्रम है। जो अपने कार्य को दत्तचित्त होके करता है वो अपने को पवित्र बना के स्वयं आनन्द को प्राप्त होता है।

जहाँ की चिन्ता वहीं रखना, प्रत्येक मनुष्य सर्वकाल में सन्तुष्ट और प्रसन्न रह सकता है।

एक विद्वान का कथन है जहाँ की चीज वहीं रखना बुद्धिमानी

है। जैसे राज्य की चिन्ता राज्य- दरबार में रखना मेंघर आवे तो घर की चिन्ता ऐसे ही सब कामों में जानना।

ग्लेडस्टन यूरोप का मन्त्री बहुत बुद्धिमान था। जब वह अपने कार्य से निवृत होता तब सर्व चिन्ताओं को वहीं छोड़ देता और अपने घर पर आकर अपने पुस्तकालय में शांतचित्त होकर पुस्तकों का विचार करता। उसी का यह कथन है। "शरीर की नाईं चित्त भी रोगी हो जाता है" ऐसी अवस्था में उसका दूर करना अति आवश्यक है परन्तु वह सहज नहीं। यद्यपि तुच्छ दुःखों से बड़ा कष्ट नहीं होता यदि उन्हें बढ़ने से रोका जाय।

प्रत्येक मनुष्य यदि चाहे तो अपने को सर्व काल में सन्तुष्ठ और प्रसन्न रख सकता है ये काम अपने ही हाथ में हैं दूसरों की लाख सहायता से नहीं हो सकता। वे उपाय ये हैं कि जब मनुष्य स्वस्थ या खाली होता है उस समय संध्या की छायावत् पुरानी बातें आप से आप स्मरण करके उन्हीं में तल्लीन होके तथा बढ़ा के और उसके सम्बन्ध से अन्य संकल्पों को करके वृथा दुःख को बढ़ाता है इससे ये दुःख दूर करने के लिये सदैव किसी कार्य में मन को लगाये रहना चाहिये यही सबसे बड़ी आपत्ति है जिसे आप ही निर्माण करता और दुखी होता है।

आदर्श जीवन

पुस्तक पढ़ के उसका
साधन भी करना चाहिये
केलव पढ़ने की धुन में नहीं
लगे रहना, ऐसे व्याख्यान
देना पुस्तक लिखना
भी है।

पुस्तक पढ़ना अच्छा है परन्तु पुस्तक पढ़ने की धुन अच्छी नहीं। पुस्तकों के पढ़ने वाले विषयों को जान लेते हैं, उससे दूसरों को शिक्षा भी दे सकते हैं, उन पठित लेखों पर अच्छा-अच्छा लेख लिख सकते हैं, व्याख्यान दे सकते हैं, परंतु इससे स्वयं अपना उद्धार नहीं हो सकता और न सच्चा आनन्द और न सच्ची शान्ति ही मिल सकती है। अतः पढ़ने, सुनने और बात-करने से अधिक समय साधन करने में, आचरण करने में और अपने बुरे स्वभाव के जीतने में लगाना चाहिये। अपने उद्धार का सबसे उत्तम मार्ग यही है। मित्रों की गपशप-समाचार पत्रों का अधिक देखना, उपन्यासों से जी बह-लाना तथा भाँग गाँजा अफीम आदि व्यर्थ व्यसनों को छोड़ के अपने अमूल्य समय को बचा के योग साधन आत्मचिंतन तथा जो उपदेश हम पढ़ते हैं उसके अनुसार चलने में कितनी सफ-लता प्राप्त की कितनी बाकी है, बारम्बार ऐसा विचारने में तथा मन जब-जब शास्त्र सिद्धांत से विरुद्ध चले तब-तब उसे बारम्बार चैतन्यता और बलात्कार से रोकने में कुछ दिन अभ्यास करना

चाहिये। ऐसे करने से थोड़े ही दिनों में सफलता अवश्य होगी परन्तु इसमें बड़े धैर्य और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। तथापि सच्चे साधकों को अति सरल है। पुस्तक लिखने वाला इसी उद्देश्य से पुस्तक लिखता है कि लोग इससे अपना जीवन सुधार सकें, अपने कुत्सित स्वभाव को अभ्यास द्वारा बदल सकें अतः यदि पुस्तक पढ़ने में एक घंटा लगा तो उसके अनुसार अपना स्वभाव बनाने में महीना दो महीना वर्ष दो वर्ष लग सकता है सो भी उस के साधन में जब नित्य कठिन परिश्रम किया जाय अन्यथा जन्म भर में भी बुरे स्वभाव नहीं बदल सकते। परन्तु संसारी जनों की विचित्र गति है; या तो वे पुस्तक पढ़ते ही नहीं याजो पढ़ने लगे तो पुस्तकों के पढ़ने ही में इतना समय लगा देंगे कि उन्हें उस पर विचार करने को या उसके अनुसार साधन करने को अरु अपना जीवन सुधारने को समय ही नहीं मिलता। यही दशा अधिक पुस्तक देखने वालों अरु व्याख्यान दाताओं की भी है कि उन्हें अपना स्वभाव सुधारने को समय ही नहीं मिलता। ऐसा लिखना-पढ़ना तथा व्याख्यान देना एक प्रकार का रोग है। अतः तुम स्वयं सोचो कि इनमें से कोई रोग तुम्हारे अंतः करण में जो आ गया हो तो उसे निवृत्त करने का यत्न करो। बिना इस रोग की निवृत्ति किए शांति और आनन्द की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। इससे किसी अच्छी पुस्तक को चुन लोऔर प्रातःकाल नित्य थोड़ा सा पाठ करो। साथ ही मन में ये भी प्रतिज्ञा करो कि आज जहाँ तक हो सकेगा इसी के अनुसार चलेंगे।

मन की अवशता का लक्षण

जिस कर्म के करने से मन में पीछे पछतावा हो; और परिणाम में शांति भङ्ग हो, जिसमें नाममात्र सुख हो परंतु

परिणाम में दुःख ही हो; ऐसे काम तभी होते हैं जब मन बश में नहीं होता। ये निरंकुश मन का स्वभाव है। अतः किसी विशेष समय पर एकाध घंटे के लिए मन को रोकने को ही योग नहीं कहते किन्तु सदैव मन पर ऐसी दृष्टि करे कि स्वतन्त्र काम न करने पावे। सब काम विचार के करे यही सर्वोत्तम योग है। इस साधन से मनुष्य मन का दास नहीं बन सकता। किन्तु मन ही उसका दास बन जाता है। ये बात निश्चित है। जो शान्ति की इच्छा करता है वो यही साधन करे। वह मष्नुय धन्य है जो मन का स्वामी है मन उसकी आज्ञा पालन करता है।

वह मनुष्य धन्य है। जो अपने मन का स्वामी है।

खेल की महिमा

संसार को खेल जान के
हर्ष विषाद से रहित होना।

सचमुच यदि तुम शाँति और सुख चाहते हो तो संसार को लीला और अपने को उसका प्रदर्शक जानो। इस दृष्टि से दु:ख भी सुख हो जाता है। अत: वेदान्त की ये आज्ञा है कि सारे संसार को लीलामय जानो। तुम उसके दर्शक बनो तो सारा संसार तुम्हारे लिये तमाशा बन जायगा। तब आनंद ही आनंद है। प्रसन्नचित से कार्य को आसक्ति रहित हो के करो और लाभ हानि में सम रहो।

जो कुछ तुम्हे करना है सो खेल समझ कर करो। कोई काम खेल समझ के करने में न श्रम ही मालूम होता है और न उत्साह ही भंग होता है। काम समझ के करने में या विवश हो के करने में या परतंत्रता से करने में मनुष्य शीघ्र ही थक जाता है। परन्तु खेल में स्वतंत्रता से करने में कठिन से कठिन परिश्रम करके भी नहीं थकता। अध्यापक के खड़ा करने पर लड़के एक घंटे में ही थक जाते हैं और वे ही खेलतमाशे में आठ-आठ घंटे खड़े देखे गये। लोग उत्साह से खेल में कठिन से कठिन परिश्रम कर डालते हैं। रामचन्द्र ने त्रेता में जो कठिन काम किया वह खेल समझ के ही किया। इसी से इनका कार्य भी कार्य नहीं कहलाता किन्तु लीला कहलाती है। जैसे रामलीला कृष्ण लीला। व्यास जी ने भी कहा है—लोकवतुलीला कैवल्यं—अत: यदि तुमको सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप होना है तो संसार को लीला

मात्र समझो इस पर आरूढ़ होने से तुम पुण्य पाप से लिप्त न होगे। जब वास्तव में तुम संसार को खेल समझोगे तब तुम्हारे हृदय से ईर्षा द्वेष मान मदादि सर्वथा नष्ट हो जायँगे। तुम्हारा हृदय आनन्द से पूर्ण होगा मुख पर प्रसन्नता रहेगी और अंत: कारण एक छोटे बच्चे की भांति स्वच्छ हो जायगा। वह खेल का महात्म्य है। जुयें का नहीं; जिसमें बाजी लगाई जाय। जिस खेल के साथ हानि लाभ मिला हो वह खेल नहीं, किन्तु जुआ है। बड़ा दु:ख दायी है। उसे विषवत् जान के सर्वदा परित्याग करने योग्य है।

भक्ति उपासना का प्राण और योग उपासना का शरीर है।

प्रेम का रहस्य

प्रेम का महात्म्य; मीरा का
दृष्टान्त ।

प्रेम की अद्भुत महिमा है। प्रेम में शीतल करने की शक्ति है। और विरोध में जलाने की शक्ति है। एक प्रेमी पुरुष किसी गाँव में चला जाय या किसी सभा में चला जाय तो सब को शीतल कर दे। वहाँ अमृत की वर्षा होने लगे। जैसे प्रह्लाद को जब हिरण्यकश्यप ने जलती आग में डाल दिया तब प्रह्लाद ने कहा।

राम नाम जपतां कुतो भयंसर्वत्तापशमनैक भेषजं पश्य-तातममगात्र संगमात्यावकोपि सलिलापतोधुना "।

मनुष्य जब अपने प्रिय को देखता है तब गद्‌दद होता है, पानी २ हो जाता है, शीतल हो जाता है। वही मनुष्य जब अपने विरोधी को देखता है तो शांति भंग हो जाती है, हृदय में आग लग जाती है, सारा खून उबलने लगता है, छंटाक भर खून जल जाता है। इसकी परीक्षा हो चुकी है और तुम भी कर सकते हो यदि दो मनुष्य पूर्ण क्रोध से लड़ते हों, उन दोनों के मुँह का थूँक लिया जाय तो उसमें विष पाया जायगा। बिल्ली और कुत्तों को खिलाने से मर जायँगे। ऐसे ही दो प्रेमियों का अत्यंत प्रेम से मिलाप होने पर दोनों का थूँक ले के पागल कुत्तों को दिया गया तो वे अच्छे हो गये।

साधुओं का जूठा फल लोग खाते हैं उसका कारण यही है कि साधू उसी का नाम है जिसके रोम २ में ईश्वरी भक्ति और प्रेम भरा हो इससे साधू के मुँह में अमृत होता है।

अब्धौ विधौ विधुमुखे फणिनां निवासे, स्वर्गे सुधावसति वै विवुधा वदंति। क्षारे क्षयं पतिमृतिर्गरलं निपात:, कंठे सुधा वसति वै भगवज्जनानाम् ॥

विद्वानों का बचन है कि अमृत का वास समुद्र में, स्त्री मुख में, चन्द्रमा में, पाताल में तथा स्वर्ग में है। परन्तु इन स्थानों का अमृत दोषपूर्ण है क्योंकि समुद्र में क्षार, चन्द्रमा में क्षय, स्त्री में पतिमरण, स्वर्ग में पतन और पाताल में विष होता है। निर्दोष अर्थात् शुद्ध अमृत तो भगवत्भक्तों के कंठ में रहता है।

इससे प्रेमी मनुष्य धन्य हैं। और जिसे प्रेमी मनुष्य के दर्शन हुये वह भी धन्य है। प्रेमियों के दर्शन से हृदय में वही आनंद होता है जो ईश्वर के दर्शन से होता है। सच्चा प्रेमी साक्षात् भगवान है। उसका जूठा, "अकाल मृत्यु हरणं सर्व व्याधिविनाशनं" वाला महा प्रसाद है। परन्तु आज कल के नामधारी साधू का जूठा विष तुल्य प्रभाव डालेगा। इससे सच्चे प्रेमी का दर्शन हृदय को शीतल और शांति देने वाला है। प्रेमी में इतनी शीतलता है कि प्रेम रक्त के अवगुणों को ऐसा बना देता है कि उसमें विषभी प्रवेश करे तो पानी हो जाता है। जैसे मीराबाई को श्रीकृष्ण प्रेम के कारण उनके ससुर के दिये विष का किंचित मात्र भी असर नहीं हुआ।

इससे जिसका किसी के साथ विरोध न हो वह कभी बीमार नहीं पड़ सकता। अत: वह पुरुष धन्य है जिसका किसी से विरोध न हो और जो सदैव अपने प्रियतम के ध्यान में निमग्न रहता हो।

सब संसारी जन जिन वस्तुओं पर मोहित होते हैं वे नाश होने वाली हैं। वैसे ही मानुषी प्रेम भी नाशवान और अनित्य

है। किन्तु जिसका सम्बन्ध वाह्य वस्तुवों पर नहीं है उस प्रेम का नाम ईश्वरी प्रेम है।

प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रेम गुप्त रूप से छिपा हुआ है और उसका पवित्र और निर्दोष तत्व नित्य और स्थायी है। यद्यपि इस ईश्वरीय प्रेम के ऊपर बड़े-बड़े अभेद्य आवरण हैं। जिससे मनुष्य की पहुँच उस प्रेम कठिनाई से हो सकती है। ये तत्व मनुष्य के हृदय में ही है। इसी का नाम ब्रह्म है। इसी का ईश्वर से सम्बन्ध है। यही वास्तविक है और सब काल्पनिक है। यही अजर-अमर नित्य और स्थायी है; और सब अनित्य अस्थायी है।

निरन्तर श्रम करने से तथा ज्ञान और अनुभव करने से अरु तन्मय होने से मनुष्य उसी समय मोक्ष को प्राप्त होता है और अपने स्वाभाविक अनन्त ज्ञान, अनन्त गुण, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य को प्राप्त होने पर ब्रह्म परमात्मा में लीन हो सकता है। उसमें और परमात्मा में किंचित मात्र भेद नहीं रहता। किन्तु साक्षात् परमात्मा रूप हो जाता है।

इस ईश्वरीय प्रेम प्राप्ति और अनुभव के लिये बड़े उत्साह से धैर्य और विश्वास पूर्वक उद्योग करना परम आवश्यक है। क्योंकि परमात्मा से प्रेम के अनुभव करने के लिये पहले अनेक हृदयस्थ अवगुणों को त्याग और अनेक शुभ गुणों का संपादन करना पड़ता है।

जैसे मूर्ति बनाने वाला किसी खड़बड़े पत्थर को देखता है तब कहता है कि इसके भीतर एक बहुत सुन्दर मूर्ति छिपी हुई है, जिसके प्रगट करने को किसी चतुर शिल्प कार की जरूरत है। ऐसे ही प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्वर की मनोज्ञ और अनुपम मूर्ति विद्यमान है, परन्तु उसे प्रगट करने के लिये श्रद्धा रूपी हाथ

और धैर्य तथा संतोष रूपी छेनी की आवश्यकता है। इससे वह मूर्ति विशुद्ध निर्दोष और निःस्वार्थ प्रेम के रूप में प्रगट होती है और उसी रूप में उसका भलीभाँति ज्ञान और अनुभव किया जा सकता है।

पतन, पराजय, अवनति तथा स्वार्थपरता की ओर प्रवृत्ति, ये मनुष्य की शिक्षा और अनुभव के कारण हैं, इन्हीं से मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होती है और जिज्ञासु को अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायता मिलती है। यदि अपने प्रत्येक घृणित कार्य को पैरों तले दबा दे, तो मनुष्य अपने पापों की एक सीढ़ी बना सकता है। इस बात को समझना मुक्ति के मार्ग में प्रवेश करना है। जो इस बात को अच्छी तरह समझ लेता है उसकी भूलें और उसके अवगुण उच्च मार्ग पर चढ़ने में सीढ़ी का काम देते हैं। जब तक कि प्रेमी भ्राता, भगिनी, पत्नी, पति, मित्रादि के वियोग से मोहित हो रहा है, और शोक, निराश, कष्ट नहीं प्रतीत करता तब तक ईश्वर की ओर कदापि नहीं लगता। इनसे हानि तथा कष्ट होने पर भी ईश्वर की ओर लगे तो भी लाभदायक है।

ऐसे ही स्वार्थी अभिमानी दुख शोक उठाकर परास्त होकर ही ईश्वरानुभव में लग सकता है। जब मनुष्य को मानुषी प्रेम से हृदय में दुख का कांटा चुभता है, तभी ईश्वरीय प्रेम की ओर आकर्षित होता है। तभी वह एक ईश्वर की ही शरण में जाना चाहता है। जिसके हृदय में ईश्वरीय प्रेम हो वह कभी निराश और दुःखित नहीं होता। उसके शोक और दुःखों का अंत हो जाता है। विपत्ति के समय भी लोग उसको साथ देते हैं।

ईश्वरीय प्रेम उसी मनुष्य के हृदय में प्रकट होता है जिसका हृदय दुःख और वेदना सह-सह के शुद्ध हो गया है। और ईश्वर दर्शन केवल उसी समय हो सकता है कि जब स्वार्थपरता अरु अज्ञान का सर्वथा नाश हो जाता है।

ईश्वरीय प्रेम, जहाँ स्वार्थ तथा पक्षपात का नाम भी नहीं रहता वहीं उत्पन्न होता है। इससे जब तक स्वार्थ मन से निःशेष न निकाला जायगा तब तक यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति कदापि न होगी। क्योंकि स्वार्थ का होना प्रेम और समताभाव न होने का सूचक है।

श्रवण से मन, मनन से वाणी और निदिध्यासन से कर्म सुधरता है।

प्रेमी और ज्ञानवान् के लक्षण

घृणा, द्वेष, स्वार्थपरता एवं
पर निन्दा का अभाव और
प्रेम, न्याय और परोपकार
आदि गुणों का ग्रहण ।

जिसके हृदय में ईश्वरीय प्रेम अथवा आत्म-ज्ञान होता है वह दूसरों की निन्दा नहीं करता और न उनमें वह भेदभाव रखता है; किन्तु प्राणिमात्र को एक भाव से देखता है न वह लोगों को अपनी राय पर चलाना चाहता है; और न अपने उद्देश्यों पर विश्वास दिलाता है। किन्तु प्रेम के सिद्धान्त को भलीभाँति जान के चुपचाप उनके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है। और सबसे प्रेम, प्रीति अरु शान्ति का व्यवहार करता है। पापी धर्मात्मा, मूर्ख विद्वान, स्वार्थी परमार्थी सब उसके शान्त गम्भीर विचारों से लाभ उठाते हैं। वह सबको एक दृष्टि से देखता है और सबसे प्रेमभाव रखता है।

जो ईश्वरीय प्रेम या ज्ञान प्राप्ति के लिये उद्योग करता है वह सदा अपने मन को परनिन्दा और घृणा के विचारों से रोकता है। जहाँ निर्दोष पवित्र आत्म-ज्ञान है या ईश्वरीय प्रेम है; वहाँ घृणा द्वेष पर-निन्दा का सर्वथा अभाव रहता है। जहाँ ईर्षा, घृणा, परनिन्दा आदि का अंश भी होता है वहाँ प्रेम और आत्म-ज्ञान भी नहीं रहता।

जिसको ब्रह्म-ज्ञान और ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति हो जाती है उसके भीतर से दूसरे के दोष ढूँढ़ने और निन्दा के भाव जाते रहते हैं और सर्व प्रकार की बुराई दूर हो जाती है। उससे प्रेम, न्याय, सच्चरित्रता आदिक उसके मन में उत्पन्न होने लगते हैं।

जिसने स्वार्थ और इन्द्रिय लोलुपता त्याग दिया है, जिसमें प्राय: लोग फँसे रहते हैं वह सर्व दु:खों से मुक्त हो जाता है और वह उच्चकोटि की सरलता प्राप्त कर लेता है। जिसको व्यावहारिक जन अज्ञानता और मूर्खता कहते हैं। जगत के मूर्ख जन चाहे सो कहें परन्तु उसको तो उच्च ज्ञान प्राप्त हुआ है। और वह ब्रह्म में लीन हो गया है। बिना उद्योग किये वह अपने अभीष्ट को प्राप्त करता है और जितनी कठिन समस्या है वे सब उसके आगे सरल हो जाती है। क्योंकि उसने मुक्तिमार्ग में प्रवेश किया है। क्षण-क्षण में बदलने वाले कारणों अरु परिणामों से उससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा किन्तु स्थिर निश्चित सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखता है। उसका हृदय ज्ञान से शुद्ध और निर्मल हो जाता है। सब प्रकार इच्छा, वासना, अज्ञान और पक्षपात को त्याग के ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। स्वर्ग के सुख की इच्छा और नरक के दु:ख को सर्वथा दूर करके जीवन की ममता को भी मन से निकाल देता है। इसी से जीवन मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। वही मनुष्य ईश्वरानुभव कर सकता है कि जिसने स्वार्थ को इतना त्याग किया है कि जीना अरु मरना दोनों अवस्था उसको समान हैं। न उसे जीने की लालसा और न मरने का भय है। वही अक्षय अनन्त सुख को लाभ कर सकता है। ऐसे मनुष्य को न कभी शोक तथा लज्जा होती है अरु न कभी निराशा तथा पश्चाताप होता है, क्योंकि जहाँ किसी प्रकार का स्वाथ नहीं रहता तहाँ दु:ख भी नहीं रहता। ऐसे मनुष्य पर जो बीतती है सो अपने अर्थ हितकर ही समझता है। वह सदा सन्तुष्ट रहता है क्योंकि वह स्वार्थ का दास नहीं है। जगत की भली बुरी घटनाओं का उस पर कुछ भी असर नहीं होता, न किसी से राग होता है न किसी से द्वेष होता है। सबसे समान भाव रखता है। शत्रु मित्र दोनों को सम

जानता है। उसे कितना ही कोई कष्ट दे व उससे क्रोध करे तथापि वह सबसे प्रेम भाव ही रखता है।

ऐसे मनुष्य अत्यन्त शान्त, गम्भीर, सरल प्रकृति और उदारचित्त होते हैं। उनके दर्शनों से जन्म सफल होता है। उनकी बातों को लोग ध्यान से सुनते हैं और उनको विचार करके अपनी आत्मोन्नति का मार्ग निकालते हैं।

आचार्य में जब तक ईश्वर बुद्धि नहीं होती तब तक विद्या एवं ब्रह्म विद्या फलदायक नहीं होती।

ध्यान माहात्म्य

एकाग्रचित्त होकर ईश्वर के
गुणों का चिंतन ।

ध्यान करने से मनुष्य मुक्ति मार्ग पर लग जाता है। ऐसी ये सीढ़ी है कि जिसके द्वारा मनुष्य इस लोक से स्वर्ग लोक में और अज्ञान से ज्ञान मन्दिर में और दुःख से शांति गृह में प्रवेश कर सकते हैं अर्थात् परमात्मा का ध्यान अरु चिन्तन करने से मनुष्य को मोक्ष पद प्राप्ति हो जाती है।

प्रत्येक महात्मा ने इसी सीढ़ी पर चढ़ के मोक्ष पद प्राप्त किया है और प्रत्येक यात्री को जिसने स्वार्थ त्याग किया है, संसार को असार जान के मुँह को मोड़ लिया है; एक न एक दिन अवश्य इस सीढ़ी के सुनहरे डंडों पर पैर जमा के रखना होगा। बिना इसके सहारे न ईश्वर प्राप्ति होगी और न ज्ञान ही होगा और न तुम परम शांति प्राप्त कर सकोगे।

संपूर्ण आध्यात्मिक जीवन और ज्ञान की उन्नति इसी ध्यान पर निर्भर है। ध्यान के बल से ही ऋषि मुनि और महात्माओं ने उन्नति की है।

एकाग्रचित्त होकर ईश्वर के गुणों का चिंतन करना इसी का नाम यथार्थ स्तुति अरु प्रार्थना है। इसी के द्वारा धीरे-धीरे उन्नति करते हुये जीव परमात्म अवस्था तक पहुँच जाता है। बिना ध्यान के केवल इच्छा रखना ऐसा है जैसा बिना प्राण के शरीर—इस ध्यान के बिना मन और बुद्धि, दुःख और पाप से छूट नहीं सकती।

यदि तुम प्रतिदिन बुद्धि की शांति और पवित्रता तथा ज्ञान प्राप्ति की प्रार्थना कर रहे हो और उसका यथार्थ साधन जो ध्यान है उसे नहीं करते तो कदापि इष्टप्राप्ति न हो सकेगी। किन्तु ज्ञान और सत्य की इच्छा करके विचार करना तथा कार्य करना आरंभ करोगे तो तुम्हें दिन-दिन उन गुणों की प्राप्ति होती जायगी। अंत में पूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लोगे।

यदि तुम शोक से मुक्त हो के निर्दोष पवित्रता का स्वाद लेना चाहते हो और नित्य पूर्ण शांति पद की प्राप्ति की इच्छा रखते हो तो ध्यान मार्ग को ग्रहण करो। परन्तु तुम्हारा ध्येय सत्य अरु परमात्मा ही होना चाहिये अन्यथा अभीष्ट सिद्धि न हो सकेगी।

ध्यान, मुक्ति द्वार की कुञ्जी है।

अनुभव पूर्वक आत्म साधन का अभ्यास

अन्तदर्शन द्वारा आत्म-
साधना ।

यदि तुम चुपके अपने मन की और चरित्र की परीक्षा करो तो तुम्हे सहज में यह ज्ञात हो जायगा कि हम सत्य के अनुयागी हैं या मिथ्या के, ब्रह्म के या माया के ।

तुम्हारे मन में इर्ष्या द्वेष, काम, क्रोध, लोभ और मान के विचार उठते हैं अथवा तुम दृढ़ता से इनका सामना कर रहे हो ? और तन मन से उनकी जड़ काटने का उद्योग कर रहे हो ? पहली दशा में चाहे तुम्हारा कोई भी धर्म हो परन्तु दूसरी दशा में चाहे किसी धर्म के पक्षपाती न हो तो भी तुम सत्य और ब्रह्म के पक्षपाती हो । यदि तुम धन संपदा के इच्छुक हो, अपने शत्रु से बड़े बेग से लड़ते हो, तुम्हें प्रभुत्व की इच्छा है, बनावट और दिखावे की इच्छा है, तो तुम अपने मन में चाहे ये समझते रहो कि हम ईश्वर भक्त हैं; परन्तु वास्तव में तुम मायाजाल में फँसे हुये हो । और माया ही के उपासक हो । यदि तुमने इसके बिपरीत धन संपदा की इच्छा छोड़ दी है, किसी लड़ाई झगड़े से तुमने सम्बन्ध नहीं रक्खा है, और नाम तथा प्रतिष्ठा की इच्छा भी तुम्हें नहीं रही है, और अपनी प्रशंसा करना भी छोड़ दिया है, ऐसी अवस्था में तुम अपनी जिह्वा से ईश्वर का नाम भी नहीं लेते हो तो भी ईश्वर के भक्त हो; ईश्वर तुम्हारे निकट है ।

जब से मनुष्य अज्ञान वश ब्रह्म को भूल गये हैं तभी से उन्होंने एक दूसरे की जाँच करने के अर्थ चिन्ह नियत किये हैं ।

वे अपने ही धार्मिक सिद्धांतों को मानते हैं और उन्हीं के अनुसार चलते हैं जो उनके सिद्धांतों के अनुकूल चलता है उसे ही सच्चा और यथार्थ समझते हैं। और जो उनके अनुकूल नहीं चलता उसे मिथ्या समझते हैं। इसका परिणाम ये होता है कि एक दूसरे के विरुद्ध हो जाते हैं और उनमें परस्पर विरोध पड़ जाता है और शोक तथा दुख ही बढ़ता है। यदि तुम ब्रह्म और सत्य को प्राप्त करना चाहते हो तो उसका केवल एक यही उपाय है कि स्वार्थ और माया को त्याग दो और जिन वासनाओं अरु विचारों में लिप्त रहते हो अर्थात् हमारा धर्म सब धर्मों से उत्तम है, इसे अपने मन से बिलकुल निकाल कर सब धर्मों को उत्तम समझो, क्योंकि सत्य सब में विद्यमान है। नम्रता और दया उदारता को धारण करो। ऐसा समझ कर सब धर्मों को उत्तम जान कर, श्रम और उत्साह से उद्योग करो; इसी से तुम ब्रह्म पद को प्राप्त होगे।

स्वार्थ और माया के त्याग करने का यह तात्पर्य नहीं कि उत्तम वस्त्र और उत्तम भोजन का त्याग करना; किन्तु धन प्राप्ति, मान की इच्छा, इन्द्रिय सुखों की लोलुपता को छोड़ के प्रेम, सभ्यता परोपकार, नम्रता को धारण करना ही ब्रह्म प्राप्ति का मुख्य मार्ग है; क्योंकि दुनिया को छोड़ कर पहाड़ की कंदरा में भी यदि जा बैठो तो भी अपने मन से स्वार्थ को अरु वासना को तो साथ ही ले जावोगे; इससे जब तक स्वार्थ और वासनाओं को न छोड़ोगे तब तक और अधिक आपत्ति में फँसोगे। इससे तुम जहाँ हो तहाँ ही रहो। अपने कर्त्तव्य अर्थात् अपने वर्ण आश्रम धर्म को इच्छा रहित होकर करते जाओ। दुनियाँ में रह कर दुनियाँ के न बनो। जैसे कमल जल में रह कर जल से अलग रहता है, ऐसे ही दुनियाँ के व्यवहारों से अलग रहो। इसी का नाम उच्चकोटि की शान्ति है। ईर्ष्या द्वेष से बढ़ कर कोई शोक

नहीं और विषय वासना से बढ़ कर कोई दुःख नहीं; और इन्द्रियों से बढ़ कर कोई धोखे की वस्तु नहीं।

ज्यों-ज्यों तुम माया को अपने वश में करते जाओगे त्यों-त्यों तुम्हें वस्तुओं के वास्तविक सम्बन्ध का ज्ञान होता जायगा। जो मनुष्य किसी इच्छा या वासना के वश में होता है उसे किसी वस्तु में प्रेम और किसी में घृणा होती है। वह प्रत्येक वस्तु का उसी इच्छा और वासना से अनुमान करता है। परन्तु इससे भिन्न जो वासना और इच्छा से रहित है और जिसमें पक्षपात का लेश भी नहीं है; वह अपने आप को और दूसरों को वास्तविक रूप में देखता है। न वह किसी पर आक्रमण करता है, और न किसी की सहायता करता है, न कुछ छिपाता है और न उसका कोई स्वार्थ होता है। इसी से वह शाँत होता है कि उसने उच्च कोटि का ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर लिया है। क्योंकि मन की शाँत, पवित्र और निष्पक्ष अवस्था ही ब्रह्म की अवस्था है। जो इस अवस्था को प्राप्त कर लेता है वही ईश्वर दर्शन करता है।

जिसे ईश्वरीय नियम का ज्ञान है, शोक दुख का वास्तविक कारण ज्ञात है और यह जानता है कि ब्रह्म के ज्ञान से मुक्ति मिलती है; वह लड़ाई-झगड़ा में अथवा बुराई में शामिल नहीं हो सकता।

यदि तुम किसी मनुष्य के कारण दुखित और चिंतित रहते हो और उससे तुम्हें दुःख हुआ है; अथवा तुम्हारा अपमान हुआ है; इसका कारण यही है कि तुम अभी दुःख मय माया के मार्ग पर चल रहे हो क्योंकि सब दुःखों का आदि कारण माया है और सब दुखों का अंत ब्रह्म है। जब तुमने ब्रह्म मार्ग में प्रविष्ट हो कर उसे अच्छी तरह जान लिया है; तो तुम्हें कदापि शोक, संताप, निराशा और पश्चात्ताप का दुःख नहीं उठाना

पड़ेगा। दुःख मनुष्य ही का उत्पन्न किया हुआ है। शोक और दुःख आत्मा को पवित्र कर देते हैं। और अधिक बुद्धिमान बना देते हैं। जहाँ दुःख का अंत होता है वहीं सुख का आरम्भ होता है।

जो अपने को बड़ा बुद्धिमान समझते हैं और माया को तथा माया के कार्यों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं समझते; वे माया के दास हैं। परन्तु तुम्हें उसी मार्ग पर चलना उचित है, जो नीति और सच्चरित्रता पर निर्भर है। ऐसा करने से ही तुम्हें ब्रह्म की प्राप्ति होगी जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता।

यदि तुम्हारे साथ कोई बुराई करे तो तुम उसके साथ भलाई करो। यदि तुमसे कोई द्वेष या घृणा करे तो तुम उससे प्रेम करो और मित्रता का व्यवहार करो। ऐसा करने से तुम्हारा सर्व स्वार्थ युक्त वासनाएँ शुद्ध होकर प्रेम रूप हो जायँगी और तुम निर्दोष एवं नम्र हो कर लोगों में चल सकोगे। सच कहा है कि शत्रु को तीक्ष्ण खड्ग से नहीं किन्तु गुड़ से मारना चाहिये।

संसार बन्धन से छूटने के लिये विवेक के बिना दूसरा उपाय नहीं है।

विचार से आध्यात्मिक बल की प्राप्ति

विचारों और भावों को वश में करने से साहस और इच्छाओं के निरोध से आन्तरिक बल की वृद्धि; दुःख के कारण हम स्वयं, प्रेम का सिद्धान्त ही सर्वोपरि।

अपने चंचल विचारों और अस्थिर भावों के वश में होना अरु उनके अनुसार प्रवृत्ति करना निर्बल और साहस हीन होना। परन्तु उन्हीं को अपने वश में रख कर उनको सन्मार्ग पर लगाना प्रबल और साहसी होना है। जिनमें पशुओं की न्याई खान पानादि वासना अधिक होती है, उनमें पशुओं की न्याई विचार शून्यता भी अधिक होती हैं। यद्यपि उनमें पशुवत् बल बहुत होता है, परन्तु वह बल वास्तविक नहीं। जब विवेक और बुद्धि की वृद्धि होती है, तब विवेक जन्य बल को वास्तविक बल कहते हैं।

जो स्वार्थ और माया के वश में है और किसी सिद्धांत पर दृढ़ नहीं है उसके स्वार्थ और भोगों में जब कमी पड़ जाती है, तब वह तत्काल विकल हो जाता है, उसे केवल अपने लाभ पर दृष्टि रहती है। इससे वह उन साधनों को ही उचित समझता है। ऐसे मनुष्य की कदापि कार्य सिद्धि नहीं होती क्योंकि वे सत्य से रहित है। जब तक मनुष्य को सर्व प्रकार के सुख प्राप्त हैं और किसी बात की कमी नहीं है तब तक उसे यह विश्वास कर लेना

सहज है कि मैं शांतिप्रिय हूँ। परन्तु जब उसके रङ्ग में भङ्ग पड़ जाय तब वह बड़े जोर से चिल्लाने लगेगा और उसकी शांति जाती रहेगी। जो आपत्ति में भी शान्ति से विचलित न हो उसको यथाथ शाँत जानना चाहिये। शाँति और धैर्य से इच्छाओं का निरोध अरु इन्द्रियों का दमन होता है। सन्तोष, सहन शीलता, ब्रह्म ज्ञान प्राप्ति का चिन्ह है, और समता भाव अर्थात् जीवन की चिन्ताओं में अरु कठिनाइयों में चित्त को विकल नहीं करना और प्रत्येक दशा में साम्य भाव रखना, बलवान विचारवान का लक्षण है।

जितना तुम धैर्य, संतोष, इन्द्रिय दमन और इच्छाओं का निरोध करोगे उतना ही तुम्हारा बल और साहस बढ़ेगा। अपने मन को एक सिद्धान्त पर लगाने से ही तुम उन्नति कर सकोगे। जैसे बच्चा बिना सहारे चलने के लिये बहुत परिश्रम और उद्योग करने पर अनेक बार गिर पड़ कर अन्त में चलना सीख लेता है; तैसे ही तुम एकांत में रहने का उद्योग करके सन्मार्ग पर चलने को तैयार हो। रीति रिवाजों की चिन्ता छोड़के लकीर के फकीर न बनो। दूसरों की बातों पर लक्ष न दो। अपनी अन्तरात्मा के आदेशानुसार तथा पूव ऋषि प्रणीत मार्ग का अवलम्बन करो। ऐसे भी मनुष्य हैं जो तुमसे कहेंगे कि तुम्हारे विचार मिथ्या हैं, तुम मूर्ख हो ये तुम्हारा बुद्धि भ्रम है। तुमको विचार नहीं है। परन्तु तुम उन लोगों की ऐसी बातों पर विश्वास न करो, किन्तु अपने शुभ और शास्त्रोक्त मार्ग पर तत्पर रहो—जब तक तुम अपनी बुद्धि से ढूँढ़ के सत्मार्ग को न जान लो तब तक किसी उत्तम श्रेष्ठ निरपेक्ष पुरुष के पास रह के अपनी बुद्धि को तीक्ष्ण करो और उनकी आज्ञा-नुसार कार्य करो तो थोड़े ही काल में उन्नति को प्राप्त होगे। तुम्हें अनेक बार परास्त होना पड़ेगा और कष्टों को सहन करना होगा।

परन्तु तुम अपने कर्तव्य पर श्रद्धापूर्वक जमे रहो उससे विचलित न हो। तब तुममें इतना बल आ जायगा कि फिर तुम्हें स्वार्थ और वासना की लहरें न बहा सकेंगी।

स्वार्थपरता किसी प्रकार की हो परन्तु वह अस्थिर है, दुर्बल अरु हानिकारक है। ऐसा जान कर जितनी निष्कामता और निस्वार्थता को धारण करोगे उतना ही शीघ्रता से आत्मिक उन्नति कर सकोगे।

जो लोग स्वार्थ से अंधे हो रहे हैं, अरु संसारिक वासनाओं में फँसे हुए हैं; वे प्रायः यही कहते हैं कि ईश्वर हमसे बहुत दूर हैं। इसी कारण ईश्वरीय प्रेम भी बहुत दूर है। उसकी प्राप्ति हम लोगों को नहीं हो सकती। इससे उस प्रेम की प्राप्ति के लिए उद्योग करना निष्फल है। सो उनका कहना यथार्थ है क्योंकि स्वार्थ अरु वासना से ईश्वरीय प्रेम बहुत दूर है; परन्तु जब मन से स्वार्थपरता का अभाव हो जाता है तब निःस्वार्थ प्रेम और ईश्वरीय प्रेम का प्रकाश होता है और वह सदैव मनुष्य के हृदय में वास करता है। ईश्वरीय प्रेम से केवल पापों की ही निवृत्ति नहीं होती किन्तु वह इतने उच्च पद पर पहुँचा देता है कि पुनः उसकी कभी लोभ और पाप की ओर प्रवृत्ति नहीं होती।

यदि तुम कहते हो कि हमें ज्ञान हो गया अब हम मुक्त हैं; तो क्या तुमने अपने स्वार्थ, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, परनिन्दा के विचारों को भी त्याग दिया है? यदि नहीं किया तो तुममें ज्ञान होने से क्या विशेषता हुई? ये बिकार तो पहले भी थे। ज्ञान होने से यदि और प्रमाद बढ़ा तो क्या लाभ हुआ? जैसे औषधि सेवन से यदि पूर्व विकारों का किंचित भी शमन न हुआ तो औषधि करने से क्या लाभ हुआ? तैसे ही ज्ञान होने

से स्वार्थ, अभिमान, क्रोध, लोभ, मान, मोहादि की किंचित भी न्यूनता न हुई तो ज्ञान होने से क्या विशेषता हुई।

जिसके मन में ईश्वरीय प्रेम अर्थात् ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है वह एक नया मनुष्य हो जाता है। मानो उसका पूर्व का स्वभाव बदल के नया स्वभाव हो जाता है। स्वार्थ और वासना के पुराने विचार उसके मन में नहीं रहते। किन्तु सन्तोष, शील, इन्द्रिय निग्रह, सभ्यता पूर्ण उदारता ये लक्षण प्रगट होने लगते हैं। ईश्वरीय प्रेम अरु ज्ञान केवल एक तरंग या भाव नहीं है। किन्तु इस ज्ञान से परमानन्द का अनुभव होता है और अंतःकरण के सर्व विकार शनैः-शनैः निवृत्ति होने लगते हैं। इस प्रेम और इस ज्ञान को वे ही प्राप्त कर सकते हैं और समझ सकते हैं जो स्वार्थ को सर्वथा त्याग देते हैं; और नम्रता पूर्वक उन सब बातों को समझने के लिये उद्यत हैं।

जगत में कोई स्वतन्त्र और स्वाधीन शक्ति नहीं है। सर्व जन अपने भाग्य, नाम, पूर्व कर्म के बन्धनों में बँधे हुये हैं। वे कर्म स्वतः उन्हीं के बनाये हुये हैं। यदि वे चाहें तो पुरुषार्थ द्वारा धीरे-धीरे उन कर्म बन्धनों को अभ्यास द्वारा निःशेष तोड़ सकते हैं; परन्तु उन बन्धनों में जकड़े रहना उन्हें अच्छा लगता है; इससे वे समझते हैं कि हमारा स्वार्थ रूप बन्धन परम रमणीक और सुन्दर है। यदि हम इसको छोड़ देंगे तो हमारी बड़ी हानि होगी। बिना इसके हमारा जीवन सुख पूर्वक कैसे व्यतीत होगा।

किसी विद्वान ने कहा है कि "तुम आप ही दुःख उठाते हो किन्तु उसके भोगने को बलात्कार से कोई प्रेरणा नहीं करता। इसलिये उत्पन्न हो और मरो" जैसे परछाईं शरीर के साथ-साथ रहती है और धुवां अग्नि के पीछे-पीछे रहता है तैसे ही मनुष्य

के जो अच्छे और बुरे विचार होते हैं उन्हीं के अनुसार सुख-दुख उठाना पड़ता है।

मनुष्य इस कारण शोक और दुःख उठाते हैं कि उन्होंने पूर्व बुरे कर्म किये हैं। जो अच्छे कर्म करते हैं उन्हें अच्छे फल भोगने पड़ते हैं। कहावत है कि जैसा बोओगे वैसा काटोगे। इस हाथ दो उस हाथ लो। इससे यदि अच्छे फल की इच्छा है तो बुराई के बीज बोना छोड़ दो, भलाई करना सीखो। तुम दूसरों को धोखा न दो तो दूसरे तुम्हें कदापि धोखा न देंगे। तुम दूसरों की भलाई करो दूसरे स्वयं तुम्हारे साथ भलाई करेंगे।

यद्यपि जगत में मनुष्य सतयुग के सुखों से वंचित है, तथापि यदि वे चाहें तो अभी सतयुगी फलों को प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु उसके लिये स्वार्थ ईर्षा, द्वेष, निन्दा, घृणा को त्याग कर क्षमा, सभ्यता से पूर्ण प्रेम ग्रहण करना होगा। जहाँ निन्दा घृणा और द्वेष हैं, तहाँ ईश्वरीय प्रेम का अभाव होता है, ये प्रेम उसी के हृदय में रहता है, जहाँ सब प्रकार से दूसरों की निन्दा का अभाव है।

तुम अपने मन और इन्द्रियों को वश करने से, अपने मन पर विजय प्राप्त करने से अलौकिक ज्ञान और इश्वरीय प्रेम को प्राप्त कर सकते हो। जिनका अंतःकारण शुद्ध है, वे ही ईश्वर दर्शन कर सकते हैं। सच कहा है किसी कवि ने "सांचे रांचे राम"। जब तुम्हारा अंतः कारण शुद्ध हो जायगा तब तुम फिर नये सिरे से जन्म लोगे अर्थात् तुममें ऐसा प्रेम उत्पन्न होगा जिसका कभी नाश नहीं और जिससे कभी शोक दुःख की उत्पत्ति ही न न होगी। उसकी प्राप्तिसे तुमको परम शाँति प्राप्त होगी।

जब तक तुम संसार के सर्व मनुष्यों को चाहे आस्तिक हों चाहे नास्तिक हों, चाहे सत्य का अनुयायी हों चाहे मिथ्या का, चाहे धर्मात्मा वा अधर्मी हो, चाहे पुण्यवान हो या पापी हो,

समान दृष्टि से न देखोगे, पक्षपात छोड़ के इच्छा द्वेष से रहित हो के एक समान समझोगे, तब तक प्रेम और आत्म ज्ञान से वंचित रहोगे जो मुक्ति और स्वाधीनता का कारण है।

ईश्वरानुभव अथवा आत्मज्ञान कोई झूठा विचार और काल्पनिक सिद्धांत नहीं है। यह उस अवस्था का नाम है कि जो निरंतर आत्मचिंतन करने से और अंत:करण शुद्ध होने से प्राप्त होता है। ये कोई सहज बात नहीं हैं। इसके लिये वर्षों इन्द्रिय निग्रह और मन को जय करना होता है। जब शरीर में किंचित ममता नहीं रहती और शरीर को धारण करते हुये भी अपने को शरीर से भिन्न जानता है; और विषय वासनाओं को मंद करता है; भूख प्यास की वेदना को सहन करता है और शरीर तथा मन को पूर्णतया अपने वश कर लेता है; तब चित्त शांत हो के आत्मानुभव करता है। और पूर्ण शांति प्राप्त होती है। उसी समय ईश्वरानुभव और पूर्ण ज्ञान होता है। उस समय आत्मा और ब्रह्म में किंचित भेद नहीं रहता एक रूप हो जाता है।

किस मनुष्य में कितना सत्य है इसका अनुमान उसके प्रेम से किया जा सकता है। उस मनुष्य से सत्य कोसों दूर है। जिसके अंत:करण में प्रेम नहीं, जिसमें द्वेष और पक्षपात है, और सहनशीलता का अभाव है, वह चाहे जैसे उच्च धर्म का मानने वाला हो तो भी उसमें सत्य बहुत कम है।

जो सहन शील और दोनों पक्ष की युक्तियों को ध्यानपूर्वक सुन के निष्पक्षता से विचारपूर्वक परिणाम निकालने को उत्सुक रहते हैं, उनमें पूर्ण रूप से सत्य विद्यमान है।

किस मनुष्य में ज्ञान और बुद्धि कितनी है यह इसकी प्रवृत्ति से ज्ञात होता है कि वह कैसा जीवन व्यतीत करता है। स्वभाव कैसा है। लुभाव के समय उसकी प्रवृत्ति कैसी होती है।

अनेक मनुष्यों को इस बात का अभिमान होता है कि हमें ब्रह्मज्ञान है और हम में सत्य विद्यमान है। परन्तु वे सदा शोक दुःख और निराशा में फँसे रहते हैं और पहली बार विपत्ति आने पर उससे विकल हो जाते हैं; उसे संहार नहीं कर सकते।

सत्य ज्यों का त्यों रहता है; उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। जिसमें परिवर्तन होता है वह सत्य नहीं। जितना मनुष्य सत्य पर दृढ़ रहता है उतना ही वह धर्म पर दृढ़ होता। अपनी कषाय और वासनाओं को त्याग के उन्नति करता जाता है।

लोग मिथ्या और कल्पित सिद्धांतों को स्वयं गढ़ लेते हैं। और उन्हीं को सत्य कहने लगते हैं। वास्तव में सत्य गढ़ा नहीं जाता। सत्य का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है। साधारण बुद्धि की वहाँ तक गम भी नहीं है। केवल निरंतर के अभ्याय से ही उसकी प्राप्ति होती है और शुद्ध अंतःकरण में ही उसका प्रकाश पड़ता है। सच्चा वही है जो सच्चाई को अपने जीवन में व्यवहार करता है; और जो शरीर मन वाणी से सत्य का पालन करता है।

जो अपने मन को अपने वश करके सब मत मतांतरों को छोड़ के किसी संप्रदाय से विशेष सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु सर्व प्रकार के राग द्वेष, कलह, निंदा, पक्षपात से रहित हो के एकांत वास करता है और शाँत गँभीर स्वभाव हो कर अपनी इच्छाओं को अपने वश में कर लेता है और सबके साथ प्रेम पूर्वक व्यवहार करता है उसी को पूर्ण सत्य ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है।

जो प्रत्येक अवस्था में शाँत, गंभीर, सहन शील रहता है वही सच्चा ब्रह्म ज्ञानी है। केवल शाब्दिक वाद-विवाद और

धर्म ग्रन्थों से सिद्ध नहीं हो सकता। यदि लोग सत्य को दया, क्षमा, शाँति, सहनशीतला द्वारा नहीं जान सकते तो केवल शब्दों द्वारा कैसे जान सकेंगे, कदापि नहीं जान सकते। क्रोधी मनुष्य को एकांत अथवा शाँत अवस्था में शाँत तथा गंभीर होना सहज है। कृपण को भी एकांत और शाँत अवस्था में दयालु होना सहज है कि जब और लोग उनसे प्रेम से व्यवहार करें। परन्तु जो घोर विपत्ति में भी शांति अरु धैर्य को नहीं छोड़ता और कठिन से कठिन अवस्था में भी सभ्यता और नम्रता का व्यवहार करता है; उसी को ब्रह्म ज्ञान है। इसका कारण यह है कि ये गुण केवल ब्रह्मा वा ईश्वर में ही हैं। केवल इन गुणों को वही अपने जीव में प्रकाशित कर सकता है; जिसने उच्चतम ज्ञान प्राप्त किया है और उच्च स्थायी सिद्धाँत को समझ लिया है और उसके अनुसार कार्य करना आरम्भ किया है। अतएव सत्य ब्रह्म के विषय में व्यर्थ की युक्ति न देकर केवल ऐसी बातें सोचनी, करनी तथा कहनी चाहिये कि जिनसे प्रेम, क्षमा, शांति, सुविचार, सहानुभूति उत्पन्न हो। उन्हें अंतरंग गुणों का अभ्यास करना चाहिये और नम्रता तथा दृढ़ता से श्रम करके उस ज्ञान की खोज करनी चाहिये कि जो आत्मा के सर्व प्रकार के पापों से और दोषों से रहित करता है और हृदय को निर्मल और शुद्ध बनाता है।

केवल एक ही सिद्धांत विश्व व्यापी है जो विश्व भर का कारण है; उसी में अन्य सर्व सिद्धान्त गर्भित हैं। यह प्रेम का सिद्धान्त है। यद्यपि भिन्न-भिन्न देशों में और समयों में भिन्न-भिन्न नामों से कहा जाता है, परन्तु ज्ञानी पुरुष उसको चाहे जिस नाम से कहें, समझें, नाम और धर्म जगत से मिट जाते हैं परन्तु प्रेम का सिद्धान्त अमिट है। उसका किसी युग में और किसी काल में नाश नहीं होता। उसको जानने और उसके अनु-

सार आचरण करने से मनुष्य अजर-अमर होकर जन्म मरण के दुःखों से छूट जाता है।

यही कारण है कि जीव पुनः पुनः कष्ट उठाते हैं अरु जन्म लेते तथा मरते हैं। जब इस सिद्धान्त को भली-भाँति समझ जाते हैं तब सारे दुःख दूर हो जाते हैं। आवागमन मिट जाता है और आत्मा परमात्मा एक रूप हो जाते हैं। जब किसान पृथ्वी को जोत कर बीज बो देता है तब वह जानता है कि मुझे जो कुछ करना था मैं कर चुका अब मुझे इन्द्र देवता अर्थात् वर्षा पर विश्वास करके सन्तोष और धैर्य से फसल होने तक ठहरूँ, क्योंकि अब वृथा चिंता करने से कुछ भी लाभ न होगा। ऐसे ही जिसने सत्य ब्रह्म को जान लिया है और ईश्वरानुभव कर लिया है और नेकी, भलाई, प्रेम, शान्ति, पवित्रता के बीज बो दिये हैं और किसी प्रकार की आशा नहीं रखता और न फल की प्रतीक्षा करता है वह जानता है कि जगत का जो नियम है उसी नियमानुसार कार्य हुआ करते हैं। उससे किंचित भिन्न नहीं हो सकता इससे चिंता करना वृथा है।

जो काम स्वार्थ रहित हैं वे ही सदा रह सकते हैं। स्वार्थ के काम बलहीन हैं और शीघ्र नष्ट होने वाले हैं। छोटे-से-छोटे काम को निस्वार्थ भाव से हानि उठा कर भी खुशी-खुशी करना; इसी का नाम सच्ची सेवा है और ऐसे ही काम दृढ़ और स्थायी रहते हैं और स्वार्थ से करना, चाहे देखने में वह काम कितना ही बड़ा हो और उसमें प्रत्यक्ष सफलता भी हो, सेवा धर्म से अनभिज्ञता सूचित करता है। ऐसा काम शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

जो सुख, इन्द्रिय जय और सांसारिक जय में प्राप्त होता है वह क्षणिक और अस्थिर है और परीक्षा तथा विपत्ति के समय नष्ट हो जाता है। विपत्ति में केवल वही शांति स्थिर रह सकता है जो नित्य है और जिसका ईश्वर से सम्बन्ध है और केवल वही हृदय उसका अनुभव कर सकता है। जिसमें स्वार्थ की गन्ध भी नहीं और जो प्रेम में डूबा हुआ है। भक्ति वा पवित्रता में ही नित्य अविनाशी शांति है। इन्द्रियनिग्रह और मन को वश करने से शांति मार्ग का पता लगता है। ज्योंही लोग शांति मार्ग पर पग रखते हैं त्योंही पवित्रता में सम्मिलित होते जाते हैं परन्तु उस पवित्रता का पूर्ण आनन्द तभी मिलता है कि जब स्वार्थ का सर्वनाश हो जाता है।

यदि तुम उस प्रकाश को जो कभी मंद नहीं होता और उस आनन्द का जिसका कभी अंत नहीं होता और उस शांति को कि जिसका कभी नाश नहीं होता, उसे चाहते हो और अपने पापों तथा क्लेशों और दुःखों से और चिन्ताओं से सदैव को छूटना चाहते हो तो अपने मन पर विजय प्राप्त करो और अपने इन्द्रियों का दमन करो।

अपने प्रत्येक विचार, भाव, शब्द और कार्य को शुद्ध करो बिना शान्ति और मुक्ति के अन्य उपाय नहीं हैं। यदि तुम इस मार्ग पर चलने को उद्यत न होगे तो चाहे जितनी प्रार्थना पूजापाठ आदि करो शीघ्र फल प्राप्ति न होगी और सब परिश्रम व्यर्थ ही होगा। इसमें कोई देवता सहायता नहीं कर सकता किन्तु अपना पुरुषार्थ ही मुख्य कार्य कर सकेगा।

कुछ समय के लिये इंद्रिय सुखों और वाह्य सांसारिक वस्तुओं के बंधन को त्याग कर अपने हृदय मंदिर में सबसे भीतरी गुहा में प्रवेश करो वहाँ तुम्हें कोई स्वार्थ युक्त विचार न दबा सकेगा

किन्तु वहाँ पर पूर्ण शाँति होगी। यह वही स्थान है जहाँ पवित्र शाँति और पूर्व सुख तथा आनन्द प्राप्त होगा। यदि तुम कुछ समय तक उस स्थान पर रहकर आत्म विचार में ध्यान लगाकर तल्लीन होगे तो उस समय सत्य-स्वरूप का अनुभव करोगे। यही शाँति स्थान और नित्य लोकहै। यदि एक मिनट भी आत्म ध्यान में निमग्न होगे तो मुक्ति में तनिक विलंब न होगा। ये सर्व शास्त्र संमत है।

ईर्ष्या द्वेष से बढ़ कर कोई शोक नहीं और विषय वासना से बढ़ कर कोई दुःख नहीं और इन्द्रिय सुख से बढ़कर धोखे की कोई वस्तु नहीं।

आत्मानुभव-ब्रह्म-ज्ञान प्राप्ति का उपाय

सांसारिक सुख, सुख नहीं सुखाभास हैं, वे क्षणिक एवं विनाशी हैं। आत्यानुभव ही परमानन्द है।

यद्यपि मनुष्य संसार के अस्थिर क्षणभंगुर पदार्थों की इच्छा करता है और रात दिन अपने शरीर के पोषण में लगा रहता है और यह जानता है यह देह अवश्य एक दिन नष्ट होगी और मिट्टी में दब जायगी या अग्नि में भस्म होगी या चील, कौवा, कुत्तादिकों का भोजन होगी। ऐसा जान के जिसने एकांत में ईश्वर का भजन करके हृदय में आनंद और उल्लास का अनुभव कर लिया है वही धन्य है। यद्यपि मनुष्य का यह विचार निरर्थक है कि संसार के सुख स्थायी हैं। शोक और दुःख निरंतर इस बात का स्मरण कराते हैं कि ये सुख वास्तव में सुख नहीं हैं किन्तु सुखा भास हैं। और क्षणिक और विनाशी हैं, इनसे किंचित भी शांति नहीं मिल सकती यद्यपि मनुष्य इस बातपर विश्वास करता है कि पूर्ण आनंद भौतिक पदार्थो में है परन्तु आनंद उन पदार्थों में नहीं है ये बात पूर्वा पर विचार करने से ज्ञात होती है। जैसे मिठाई निरोग मनुष्य को परम स्वादिष्ट और सुखदायी प्रतीत होती है और वही मिठाई रोगी को अति कड़ और दुःखदाई प्रतीत होती है इससे ज्ञात होता है कि यदि मिठाई में सुख होता तो एक को सुख और दूसरे को दुःख न होता इससे मिठाई में सुख नहीं यह सिद्ध हुआ। ऐसे ही प्रत्येक वस्तु में जानना।

आत्मा परमात्मा से यद्यपि किसी प्रकार भिन्न नहीं इसमें वेद शास्त्र युक्ति सब प्रमाण हैं, परन्तु संसार बंधन से तब तक कदापि

मुक्त न होगा जब तक इस जल के बुदबुदे की न्यायी क्षणभंगुर शरीर से आसक्ति को न छोड़ेगा।

जगत में जो वस्तु स्थिर है अस्थिर कभी नहीं हो सकती; और जो सत्य है वो असत्य कभी नही हो सकती और जो असत्य है वह सत्य कभी नहीं हो सकती। इससे मनुष्य शरीर जो विनाशी है थोड़े ही दिनों में नष्ट होने वाला है, कभी अविनाशी नहीं हो सकता। परन्तु शरीर पर विजय प्राप्त करके इन्द्रियों का दमन और इच्छाओं को अपने वश में करके अविनाशी पद को प्राप्त हो सकता है।

अतएव मनुष्य मात्र को उचित है कि इन्द्रिय निग्रह करके पाशविक वासनाओं को दमन करके भोगविलासों में लिप्त न हों और सांसारिक सुखों को तुच्छ और क्षणिक समझें, सदाचार और स्वधर्माचरण में प्रवृत्त होवें। दया, प्रेम, क्षमा, शाँति, नम्रता, सहन शीलता आदि ईश्वरी गुणों का अभ्यास करें और प्रतिदिन आत्मोन्नति करते जायँ; इसी से पूर्ण ज्ञान और पूर्ण प्रेम की प्राप्ति हो सकेगी।

जिसने अपने स्वार्थ को नष्ट कर दिया है और इन्द्रियों को अपने वश में इतना कर लिया है कि सब जीवों के प्रति समान भाव रखता है। सबको प्रेम दृष्टि से देखता है किसी से द्वेष नहीं रखता उसी को ब्रह्म ज्ञान है। वही सर्वश्रेष्ठ और दूरदर्शी है।

स्वार्थ के त्याग देने से सब कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं और अज्ञानता का सर्वनाश हो जाता है। कितना ही कोई कठिन प्रश्न हो इन्द्रिय निग्रह और आत्म विजय से सरल हो जाता है। जब स्वार्थ जाता रहता है तब उसके सारे भ्रम दूर हो जाते हैं।

माया के वशीभूत हो कर लोग ब्रह्म से वंचित रहते हैं। उन्हें स्वार्थ का अधिक ध्यान रहता है। वे रात दिन इन्द्रिय सुखों की लालसा करते रहते हैं। इसी से पवित्र स्थायी सुख को खो बैठते हैं।

जितने ऋषि-मुनि, महात्मा हुए हैं, सबों ने धर्म का सार यही वर्णन किया है कि अपने अंतःकरण को शुद्ध करना। परमात्म अवस्था तक पहुँचने के लिये अंतःकरण की शुद्धि ही प्रथम सीढ़ी है। जो इस मार्ग का अवलम्बन करता है वह शीघ्र ही उस अजर अमर अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जो जन्म-मरण के दुःखों से रहित है। उसे इस बात का भी ज्ञान हो जायगा कि छोटे-छोटे काम का भी फल मिलता है और कुछ भी उद्योग निष्फल नहीं जाता।

श्रीकृष्ण, बुद्ध, ईसा आदि ने भी स्वार्थ त्याग से आत्मोन्नति द्वारा इस पद को प्राप्त किया है। आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। जितना मनुष्य स्वार्थ का त्याग करता जाता है उतना ही आत्मिक ज्ञान बढ़ता जाता है। यहाँ तक कि उन्नति करते-करते एक दिन वह स्वयं परमात्म रूप हो जाता है।

प्रत्येक जीव का यही अभीष्ट है और इसी को प्राप्त करना है। जब तक जीव इस अवस्था को पूर्ण रूप से प्राप्त न कर लेगा तब तक उसे जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा नहीं हो सकता।

❀ विवेकजन्य बल ही वास्तविक बल है।

सद्‌गुरु सेवा

सद्‌गुरु सेवा ही परमार्थ
का जन्म स्थान है।

सद्‌गुरु सेवा ही परमार्थ का जन्म स्थान है। सद्‌गुरु सेवा से आप ही आप समाधान मिलता है। भजन-भाव से सद्‌गुरु का चित्त प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा दाता सद्‌गुरु ही है जो शरणागतों की चिन्ता मातृवत् करता है। नाना यत्न करके माता के समान बालक रूपी शिष्य का पालन-पोषण करता है। अतएव जिससे गुरु सेवा बन पड़ती है, वही धन्य है। सद्‌गुरु की सेवा बिना शान्ति का अन्य उपाय नहीं। (श्रीमद्‌भागवत)

आचार्यं मा विजानीन्नावमन्येत [illegible]हचित् न मर्त्यबुध्या-सूयेत सर्वदेवमयो गुरुः। (मनुः)

आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्।
स गच्छत्यंजसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम्॥
ऋषयश्चापि देवाश्च प्रीयन्ते पितृभिः सह। (भारते)
पूज्यमानेषु गुरुषु तस्मातपूज्यतमो गुरुः॥
सर्वस्वमपि यो दद्याद् गुरुभक्तिविवर्जितः।
नरकान्तमवाप्नोति भक्तिरेवहि कारणम्॥
गुरुभक्तेः परं नास्ति भक्तिः शास्त्रेषु सर्वतः।
गुरुपूजां विना नाथ कोटि पुण्यं वृथा भवेत्॥

संसार में गुरु मेरा ही स्वरूप है। हे उद्धव ! ऐसा जान के कभी भी गुरु का अपमान नहीं करना। यावज्जीवन जो केवल गुरु सेवा करता है उसको अनायास ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। श्री गुरु की पूजा से ऋषि-पितर देवता भी प्रसन्न होते हैं।

अतः गुरु ही पूज्यतम है। गुरुभक्ति हीन होकर सर्वस्व देने पर भी नरक ही होता है। इससे गुरुभक्ति ही सकल सिद्धियों का कारण है।

गुरु भक्ति से परे भक्ति शास्त्र में कुछ भी अधिक वर्णन नहीं किया है तथा गुरु पूजा बिना कोटि पुण्य भी वृथा हो जाता है।

यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥

जैसे कुदारी से खोदने से जल प्राप्ति होती है तैसे ही सेवा से गुरु गत विद्या प्राप्त होती है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
गुरोः पादोदकं यस्तु नित्यं पिबति मानुषः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामधिपो जायते च सः।
गुरुपादोदकं पानं गुरोरुच्छिष्टभोजनं।
गुरुमूर्तेः सदाध्यानं गुरुस्तोत्रं सदा जपेत्।
गुरोरन्नं महादेवि यस्तु भक्षणमाचरेत्।
कोटिजन्मार्जितं पापं तत्क्षणात्तस्य नश्यति।

गुरु चरणोदक जो नित्य पान करता है वह धर्म, अर्थ, काम मोक्ष को अनायास ही प्राप्त होता है, तथा गुरुदेव का जो प्रसाद भक्षण करता है उसका कोटि जन्मों का पाप कट जाता है

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।
मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुंजरशौचवत् भावनाम्॥
गुरौ मनुष्यबुद्धितु मंत्रे चाक्षरबुद्धिता।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिंकुर्वाणों नरकं व्रजेत्॥
गुरौ मनुष्यता बुद्धिः शिष्याणां यदि जायते।
नहिं तस्य भवेत्सिद्धिः कल्पकोटिशतैरपि॥

यदि गुरु में शिष्य की मनुष्य बुद्धि हो तो सौ कोटि कल्प में भी शिष्य को सिद्धि नहीं होती।

आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम् ।
साधकेन प्रदातव्यं गुरोः संतोषकारकम् ॥
गुरोपादोदकं पानं, गरोरुच्छिष्टभोजनं ।
गुरुमूर्तेः सदाध्यानं गुरुस्तोत्रं सदा जपेत् ॥

आसन, शयन, वस्त्र, वाहन, आभूणादि गुरु के सन्तोष के लिये समर्पण करना उचित है। गुरु चरणामृत का पान, गुरु उच्छिष्ट भोजन, गुरु मूर्ति ध्यान, गुरु स्तोत्र नाम, गुरु गीता का पाठ सदा करना चाहिये।

ऊर्ध्वं तिष्ठेद्गुरोरग्रे लब्धानुज्ञों वसेत् पृथक् ।
विनीतवासा विनयी प्रह्वस्तिष्ठे द्गुरौ परम् ॥

शिष्य गुरु के सामने खड़ा रहे। पश्चात् गुरु की आज्ञा लेकर पृथक आसन पर बैठे। उनके सम्मुख अपना शरीर वस्त्रादि से आच्छादन करके विनय सहित और भयरहित होकर स्थित होवे।

गुरौ तिष्ठति तिष्ठेच्च उषितेऽनुज्ञया वसेत् ।
सेवेतांघ्रि शयानस्य गच्छंतं चाप्यनुव्रजेत् ॥
शरीरं चैव वाचं चा बुद्धींद्रियमनांसि च ।
नियम्य प्रांजलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोरमुखम् ॥
हीनान्नवस्त्रवेशः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥
नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये, नयथेष्टासनो भवेत् ॥
चापल्यं प्रमदागाथामहंकारं च वर्जयेत् ।
नापृष्टो वचनं किंचिद्ब्रूयान्नापि निषेधयेत् ॥

जात्याश्रमयशोविद्याविक्तगर्वं परित्यजन् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत् ॥
गुरु वक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यतेतत्प्रसादतः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ॥
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
नच ह्यस्यानुकुर्वीत गतिमासितचेष्टितम् ॥
परीवादात्खरो भवति श्वा वै भवति निंदकः ।
परिभोक्ता भवेत्कृमिः कीटो भवति मत्सरी ॥
गुरोः शय्यासनं यानं पादुकोपानत्पीठकं ।
स्नानोदकं तथा छायां कदापि न विलंघयेत् ॥
गुरोरग्रे पृथक्पूजांमौद्धत्यं च विवर्जयेत् ।
दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥
ऋणदानं तथाऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ।
न कुर्याद्गुरुणा सार्धं शिष्यो भूत्वा कदाचन ॥
न लंघयेद्गुरोराज्ञामुत्तरं न वदेत्तथा ।
दिवारात्रौ गुरोराज्ञां दासवत् परिपालयेत् ॥
आज्ञाभंगं गुरोर्देव यः करोति विबुद्धिमान् ।
प्रयाति नरकं घोरं शूकरत्वमवाप्नुयात् ॥
आज्ञाभंगं तथा निंदां गुरोरप्रियवर्तनम् ।
गुरुद्रोहंचय : कुर्यात्तत्संगं न कारयेत् ॥
गुरुं हुंकृत्य रिपुवन्निहरेत्परिवादतः ।
अरण्ये निर्जने देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥
पादुकां वसनंवस्त्रं शयनं भूषणानि च ।
दृष्ट्वा गुरोर्नमस्कृत्य आत्मभोगं न कारयेत् ॥
गुरुं मर्त्यं न बुध्येत यदि बुध्येत तस्यतु ।
न कदाचिद्भवेत्सिद्धिर्न मंत्रैर्देवः पूजनैः ॥
सर्वकार्यनियंतारं गुरुमात्मानमाश्रयेत् ।
गुरुश्च सर्वभावानां भावमेकं न संशयः ॥

गुरु के खड़े होने पर शिष्य खड़ा होवे। उनके बैठने पर आज्ञा लेकर बैठ जावे। उनके शयन करने पर चरण सेवा करे और उनके गमन करने पर पीछे-पीछे गमन करे।

शरीर, बचन, बुद्धि, नेत्रादि इन्द्रिय गुण अरु मन को रोक के श्री गुरु मुखारविंद की ओर देखता हुआ खड़ा रहे।

गुरु के सम्मुख साधारण अन्न भक्षण करना, साधारण वस्त्र पहनना, गुरु के पहले शयन से उठना और गुरु शयन के पीछे शयन करना चाहिये।

गुरु के समीप नीचो शय्या पर शयन करना, नीचे आसन पर बैठना और उनके सम्मुख लम्बे पैर करना या पैर पर पैर करके बैठना न चाहिये।

गुरु के सम्मुख चपलता तथा स्त्री सम्बन्धी वार्ता करना और अहंकार करना ये कार्य त्याग देना चाहिये और बिना गुरु से पूछे कोई बात व कार्य नहीं करना और गुरु को किसी कार्य को निषेध भी नहीं करना चाहिये।

गुरु मुख स्थित परब्रह्म तत्व गुरु प्रसाद से ही प्राप्त होता है इसलिये अपने आश्रम, विद्या, जाति, कीर्ति का अभिमान त्याग के गुरु शरण होना उचित है।

गुरु के पीछे गुरु का अधूरा नाम उच्चारण नहीं करना तथा गुरु के चलने कहने और कार्य करने की नकल नहीं करना चाहिये वाद विवाद करने से खर योनि और निंदा करने से कुत्ते की योनि और अन्याय या छल से गुरु द्रव्य का भोग करने से कृमि योनि शिष्य को प्राप्त होती है।

गुरु शय्या, आसन, काष्ठ पादुका, चर्म पादुका, स्नानीय जल और छाया को शिष्य को उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

गुरु के सम्मुख उनके सिवाय अन्य की पूजा तथा उपदेश करना और अपनी श्रेष्ठता जनाना ये कार्य नहीं करना चाहिए।

गुरु के साथ ऋण देना ऋण लेना तथा किसी वस्तु का मोल लेना, बेचना आदि कार्य शिष्य को नहीं करना चहिए। गुरु आज्ञा का उल्लंघन न करे तथा उनके प्रति प्रत्युत्तर न दे। दिन रात दास की न्याई उनकी आज्ञा पालन करे।

हित हो या अहित हो यदि शिष्य गुरु वाक्य श्रवण न करे अथवा सुनकर पालन न करे तो उसे रौरव नर्क की प्राप्ति होती है और पश्चात शूकर योनि की प्राप्ति होती है।

जो गुरु की आज्ञा भङ्ग करता है तथा उनकी निंदा और अप्रिय आचरण करता है और उनसे शत्रुता करता है उसका संग त्याग करे।

गुरु के प्रति कड़े शब्द बोले अथवा निंदा करे और शत्रुता करे वह निर्जन वन का ब्रह्म राक्षस हो जाता है।

गुरु की पादुका, वस्त्र, शय्या, भूषण आदि देख के नमस्कार करके रख देना, उन्हें अपने काम में नहीं लाना चाहिये।

गुरु को कभी मनुष्य रूप न समझना चाहिए, क्योंकि ऐसा जानने से मन्त्र वा पूजा द्वारा कोई भी सिद्धि प्राप्त नहीं होती है।

अतः सर्व कर्म के नियामक श्री गुरुदेव भगवान की ही शरण लेनी चाहिये। गुरु ही सकल भावों में अद्वितीय भाव है। अतः

परम करुणामय संसार समुद्र से तारने वाली नौका रूप श्री गुरुदेव के प्रति मुमुक्षु शिष्य का उपरोक्त शास्त्र विहित कर्तव्य है। इस प्रकार कर्तव्य समूह का अनुष्ठान नियमित रूप से करने पर साच्छिष्य शीघ्र ही गुरु कृपापात्र होकर अनायास संसार समुद्र को पार हो सकते हैं, इसमें किंचित मात्र संदेह नहीं है।

❀ आचार्य में जब तक ईश्वर बुद्धि नहीं होती तब तक विद्या एवं ब्रह्म विद्या फलदायक नहीं होती।

भगवज्-ज्ञान-रत्न

(द्वितीय खण्ड)

नारायण का प्रसाद

मन की एकाग्रता ही बलवान मन का लक्षण है।

× × ×

शारीरिक स्वास्थ्य, आध्यामिक साधन का सुन्दर आधार है।

× × ×

इन्द्रियजय ही जीवन की सब से बड़ी विजय है।

× × ×

समता के भाव ही विचारवान के चिन्ह हैं।

—नारायण

सुख और सफलता के मूल सिद्धांत

कौन काम पहले करना और कौन पीछे, इसका विचार—जो मन में हो वही बोलना और जो मुख से बोलना वही मन में भी होना।

प्रथम; यह जानना योग्य है कि कौन सा काम पहिले करना योग्य है और कौन पीछे। किसी काम को बिना विचारे करना तथा नियम रहित करना वा मध्य से या अंत से करना असफलता का चिन्ह है।

जो काम आदि से नियमानुसार किया जाता है उसी में सफलता होती है। जैसे विद्यार्थी पहले ही बीजगणित के प्रश्नों को समझ नहीं सकता किन्तु प्रथम उसे गिनती सीखनी पड़ती है; पीछे कठिन-कठिन प्रश्नों को भी जान लेता है वैसे ही जितने ज्ञानी-ध्यानी पुरुष देखने में आते हैं; सबको प्रथम धैर्य पूर्वक अभ्यास करना पड़ा है। निशाना वही लगा सकता है जो पहले निशाने पर अपनी दृष्टि लगाता है। अतएव जीवन में सुख और सफलता प्राप्ति के लिये पहले सत उद्देश्य होने चाहिये। बिना उद्देश्य के कोई कार्य ठीक नहीं हो सकता।

प्रथम जो काम करना है उसे अत्यन्त परिश्रम तथा जी लगा कर करना। परन्तु उस समय दूसरे काम में तनिक भी ध्यान नहीं देना।

जो मनुष्य सदा दूसरों को उपदेश देता रहता है और उन्हें काम की रीति बताता है वह स्वयं बिलकुल काम नहीं कर सकता। इससे सदैव अपने उद्देश्य पर ध्यान रख कर एकाग्रचित्त से नियम पूर्वक अपने कर्तव्य को करे। उस समय चित्त को अन्यत्र न जाने दे। द्वितीय; ईमानदारी अर्थात् काया वाचा मन से किसी प्रकार दूसरे को धोखा न दे। सत्यता से काम करे। जो मन में हो वही बोलना और जो मुख से बोलना वही मन में भी होना चाहिये।

धूर्तता और कपट त्याग कर सरल हृदय से कार्य करना, समय को वृथा नष्ट नहीं करना, उदारता का वर्णन, इन्द्रिय जय की परम आवश्यकता।

धूर्तता-मायाचार त्याग कर सरल और निष्कपटता से कार्य करना तथा किसी अनुचित कार्य के लिये किसी से दीन न होना तथा अनुचित कार्य की सहायता की आशा न करना। तृतीय; मितव्ययिता—अर्थात् अपने समय तथा द्रव्य और श्रम को सावधानी से और बुद्धिमानी से खर्च करना, वृथा नष्ट नहीं करना और विषय वासना से तन, मन और धन को वृथा नष्ट नहीं करना, इसी से बल, श्रम और साहस की वृद्धि होती है।

चतुर्थ; उदारता—मितव्ययिता की विरोधी नहीं किन्तु सहायक है, क्योंकि जो मनुष्य अपने धन, श्रम तथा अपनी मानसिक शक्तियों का दुरुपयोग अर्थात् व्यर्थ खर्च करता है, उसके पास देने को कुछ नहीं रहता। केवल धन देने का नाम ही उदारता नहीं है, किन्तु दूसरों को अपने विचारों और कार्यों से लाभ पहुँचाना तथा

शत्रु तक से दया का व्यवहार करने का नाम उदारता है। उदारता का प्रभाव बड़ा विशाल होता है। यह शत्रुओं को भी मित्र बना देती है और निराशा का नाश करती है।

पंचम; इन्द्रिय जयता—ये सबसे अधिक आवश्यक है। इसके अभाव से न जाने कितने दुःख और कितनी आपत्तियाँ आती हैं। मानसिक, शारीरिक और आर्थिक सभी कष्ट सहने पड़ते हैं। तनिक भी अपनी इन्द्रियों को वश में करने का अभ्यास करने लगे तो जगत में क्रोध का चिन्ह भी न रहे। यद्यपि प्रेम, संतोष, सभ्यता, नम्रता, दृढ़ता, पवित्रतादि गुण इन्द्रिय जय के अंतर्गत हैं। वे शनैः-शनैः सीखे जा सकते हैं। परन्तु जब तक उन्हें अच्छी तरह सीख नहीं लिया जाता तब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। ये पाँच गुण ज्ञान प्राप्ति के पाँच द्वार हैं तथा सफलता के पाँच मार्ग हैं। इनके नामोच्चारण से वा गुण-गान करने से कुछ लाभ नहीं होगा किन्तु इनका अभ्यास करने से ही लाभ होगा।

❀ सद्विवेक, ईमानदारी, मितव्यिता, उदारता एवं इन्द्रिय-जयता सफलता की अपूर्व सीढ़ियाँ हैं।

सफलता प्राप्ति का उपाय

सब कार्य विचार पूर्वक करना—मूर्ख के लक्षण, बुद्धिमान के लक्षण, मन का निरोध और वासना का शमन।

जैसे घड़ी के सब पुर्जे जब तक नियम से चलते रहते हैं तब तक ही घड़ी पूरा काम देती है। परन्तु एक भी पुर्जा नष्ट होने से सब घड़ी बिगड़ जाती है। वैसे ही मनुष्य को अपना जीवन नियमित रखना चाहिये अर्थात् प्रत्येक कार्य और गुणों का सदैव विचार रखना चाहिये। मूर्ख और बुद्धिमान में यही भेद है कि बुद्धिमान अपनी छोटी-छोटी बातों पर पूर्ण लक्ष्य रखता है परन्तु मूर्ख उसकी उपेक्षा करता है। बुद्धि इस बात की प्रेरणा करती है कि प्रत्येक कार्य तथा छोटी-छोटी वस्तु नियत स्थान पर तथा नियत समय पर रक्खी जाय और कार्य में लाई जाय और उसकी पूरी सावधानी की जाय। नियम का उल्लंघन करना नियमानुसार काम नहीं करना, दुःख तथा आपत्ति का मोल लेना है।

मूर्ख कौन है ? जिसके विचार, शब्द अरु कार्य असावधानी से होते हैं, जिसको अपने मन, वचन, शरीर के योग का विचार नहीं रहता है। अर्थात् जिसे ये भी ज्ञान नहीं रहता कि मैं क्या विचार रहा हूँ। क्या बोल रहा हूँ। क्या कह रहा हूँ। बुद्धिमान कौन है ? जो सावधानी से विचार करता, बोलता और काम करता है। वह

मनुष्य एक शब्द भी बिना विचारे, सोचे-समझे अपने मुँह से नहीं निकालता।

केवल स्थूल पदार्थों के उठाने-धरने से ही सच्चे मार्ग की प्राप्ति न जानना किन्तु यहाँ से तो यह आरम्भ होता है। मन को वश में रखने तथा वासनाओं को शमन करने और सोच समझ के मुँह से शब्द निकालने और विचारों को अच्छी तरह करने की आवश्यकता है। दृढ़ और अच्छे उपायों द्वारा जीवन को स्वस्थ और सुखी बनाने के लिये छोटे-छोटे कामों की ओर पूरा ध्यान रक्खे और खाने-पीने, सोने का समय नियत होना चाहिये। जो समय भोजन का है उसी समय सदा भोजन करना और जो समय सोने का है, उसी समय सोना। नित्य समय पर भोजन करने से पाचन शक्ति बढ़ती है। अन्यथा अपचादि रोग उत्पन्न होते हैं, उससे मन भी स्वस्थ नहीं रहता। शरीर का प्रभाव मन पर और मन का प्रभाव शरीर पर। इससे जिस काम के लिये जो समय नियत है उस काम को उसी समय करना। अन्यथा मनुष्य को सुख और शांति नहीं मिल सकती। परन्तु ये बातें भी शुरू की हैं; इन पर भी हमे संतोष नहीं करना चाहिये। किन्तु हमें अपने शब्दों तथा कार्यों को अरु विचारों को नियमित रखना चाहिये। तभी मूर्खता से बुद्धिमानी का और निर्बलता से सरलता का विकास होगा।

जब मनुष्य इस प्रकार अपने मन को सधा लेता है, तब परम सुख, श्रेष्ठ बुद्धि और उच्चतर योग्यता प्राप्त होती है। परन्तु यह अंतिम अवस्था है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक अवस्था से प्रारंभ करना चाहिए। नियमानुसार काम करना और नियमानुरूप जीवन को बनाना ही मनुष्य का उद्देश्य है। अतएव जो कुछ करो सो नियमानुसार करो। जो कुछ कहो सो नियमित कहो, जो कुछ सोचो नियमित और युक्ति पूर्वक सोचो। इसी में सफलता है और यही आत्म शांति का मूल है।

सुकार्य

सब काम नियत समय पर
करना—सुकार्य वर्णन।

जो मनुष्य सत् उद्देश्य बनाकर नियमानुसार काम करेगा उसे शीघ्र यह पता लग जायगा कि नियमानुसार काम करने में ही सफलता है। इससे सदैव इस बात का ध्यान रखना कि कौन सा काम अच्छा है तथा कौन सा बुरा है। जितना इस बात का ज्ञान होगा उतना ही जीवन उत्तम होता जायगा और उसका समय शान्ति से व्यतीत होगा।

सुकार्य का अर्थ दूसरों से
सद्व्यवहार करना—उन्नति
वाले कार्यों में पहले बुरी
बातों का त्याग; बुरे काम
वे हैं जो केवल स्वार्थवश
किये जाते हैं।

सुकार्यों से तात्पर्य यह है कि दूसरों से सद्व्यवहार करन चाहे वे उससे विपरीत व्यवहार करें। ऐसा व्यक्ति अनेक कष्टों और बाधाओं के आने पर भी अपने मार्ग से च्युत नहीं होता किन्तु सबके साथ भलाई का व्यवहार करता है।

जो लोग बुरे कामों को छोड़ कर अच्छे कामों क करना

चाहते हैं, वे भले-बुरे कामों को सहज ही में पहचान लेते हैं। जैसे स्थूल जगत में पदार्थों के रूप-रस, वर्ण आदि गुणों से उनकी पहिचान होती है। जो उपयोगी होता है वही ग्रहण किया जाता है। वैसे ही आत्मिक जगत में भले और बुरे कामों को उनके गुण, स्वभाव और प्रभाव से पहिचाना जाता है। जो उत्तम और उपयोगी हो वही ग्रहण किया जाता है।

उन्नति के जितने काम हैं उनमें पहले बुरी बातों का त्याग करने का उद्योग करना चाहिये। पीछे अच्छी बातों के ग्रहण करने का अभ्यास करना चाहिए। बालक को जब बारम्बार उसकी गलती बताई जाती है तब वह ठीक पढ़ना-सीखता है। वैसे ही मनुष्य को यावत् इस बात का ज्ञान न हो कि कौन वस्तु बुरी है और उससे कैसे बचना चाहिये तब तक वह अच्छी बातों को सीख नहीं सकता और न अभ्यास ही कर सकता है।

बुरे काम वे हैं जो केवल स्वार्थवश किये जायँ जिनमें दूसरे के हित या लाभ की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसे काम कुत्सित विचारों और अनुचित इच्छाओं से किये जाते हैं और करने वाले के मन में सदा उनके छिपाने का ख्याल रहता है। कारण कि वह डरता रहता है कि कहीं इनका परिणाम बुरा न निकले और लोक में निन्दा न हो।

अच्छे काम वे हैं जो दूसरों
के हितार्थ किये जायँ—
जिन कामों में स्वार्थ हो
परन्तु दूसरों को दुःख और
हानि हो उनको नहीं
करना।

अच्छे काम वे हैं जिनमें दूसरों के हित और लाभ का

ध्यान रक्खा जाता है। ऐसे काम शान्ति और सद्विचारों से होते हैं। उनके करने में कर्त्ता को तनिक भी लज्जा नहीं आती और न इस बात का भय होता है कि उनका परिणाम क्या होगा।

जिन कामों में स्वार्थ साधन हो और दूसरे को दुःख और हानि पहुँचती हो, चाहे कितने ही वे आवश्यक हों अच्छे काम करने वाला पुरुष उनको कभी नहीं करता। वह केवल उन्हीं कामों को करता है जिनमें दूसरों का भी हित हो। सम्यक् ज्ञान प्राप्ति और निस्वार्थ काम करने के लिये स्वार्थ की आहुति देनी पड़ती है। वह निरन्तर अपने सूक्ष्म वासनाओं को मन्द करने का यत्न करता है और इस बात का अभ्यास करता है कि क्रोध के आवेश में किसी को कोई अपशब्द न कहे और न कोई अनुचित कार्य हो।

वह सदा इन्द्रियों को अपने वश में करने और मन को शान्त करने का उद्योग करता है। स्वार्थ साधन के लिये छल-कपट, मायाचार के विचार कभी मन में आने नहीं देता। छल कपट के विचार करना उसे इतना कठिन जान पड़ता है कि जितना साधारणजनों को सहज है। जिस काम को मनुष्य करके छिपाना चाहता है अरु जिसके प्रगट करने में लज्जा आती है अथवा संकोच होता है अथवा समय पर वह उसका समर्थन नहीं कर सकता वही बुरा काम है।

जिस काम को मनुष्य छिपाना चाहता है अथवा उसका समर्थन नहीं कर सकता वही काम बुरा है; अच्छे काम वे हैं जिनके करने में लज्जा न आवे, अच्छा काम करने वाला दूसरों को दोष नहीं देता।

अच्छे काम करने में अथवा उसके प्रगट होने में कभी भय वा लज्जा नहीं होती। यही लक्षण अच्छे काम के हैं। इससे बुरे कामों को जान कर उनसे बचना चाहिये और उनका विचार भी मन में नहीं लाना चाहिये।

ऐसे ईमानदारी से अच्छे काम करने से मनुष्य को अच्छे काम करने का अभ्यास पड़ जाता है और उन बातों से बच जाता है कि जिन कारणों से अन्य लोग उसे मायाजाल में फँसा लेते थे। वे कभी दूसरों के जाल में नहीं फँसता यहाँ तक कि यदि कोई किसी कागज पर हस्ताक्षर करने वा किसी बात का वचन देने को कहे तो केवल उसके कहने मात्र से वैसा करने को कभी तैयार न होगा किंतु पहले हर एक बात को अच्छी तरह विचार करेगा उसकी बुराई-भलाई सोच कर उसका उत्तर देगा। सहसा किसी काम के करने को तैयार न होगा, विचार करने पर जिसे उचित समझेगा तथा जिसमें अपना और दूसरों का हित देखेगा उसे ही करेगा।

वह दूसरों की बातों में आकर किसी अयोग्य कार्य को नहीं करता और न दूसरों को दोष देता है कि क्या करें दूसरों के

बहकाने से ऐसा काम किया। कारण कि जिस काम को वह करता है उसे पूर्णतया विचार करके करता है।

जगत में हजारों काम बिना विचारे अधूरे रह जाते हैं वे निसंदेह अच्छे भावों से किये जाते हैं, परन्तु विचार पूर्वक न होने से उनमें सफलता नहीं होती।

अतः जो काम करो विचार पूर्वक करो। मनुष्य जितना अधिक विचार करता है उतनी अधिक उसमें काम करने की शक्ति बढ़ती है। यहाँ तक कि अच्छा काम करना उसका स्वभाव बन जाता है।

❀ अनुभवी संतों का समागम परमेश्वर से मित्रता करने का उपाय है।

सुवचन

सुवचन ही सत्य भाषण है—

सत्य का ज्ञान केवल अभ्यास से होता है। जब तक हृदय विशुद्ध न हो तब तक सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता और हृदय की विशुद्धि के लिये प्रथम सत्य भाषण करना चाहिये। असत्य, पाप, मायाचार को सर्वथा त्यागना चाहिये। जब तक मनुष्य झूठ का त्याग नहीं करता और दूसरों की निंदा करता है तथा मुख से अपशब्द निकालता है तब तक उसके हृदय में आत्म-ज्ञान का अंश भी नहीं आता। झूठा मनुष्य अंधकार में डूबा रहता है। वह भले-बुरे की पहचान नहीं कर सकता किन्तु अपने मन में यही सोचता है कि झूठ बोलना, बुराई करना आवश्यक है। जिसको उच्च ज्ञान प्राप्ति और अपने अंत:करण की शुद्धि की इच्छा है वह सत्य भाषण का अभ्यास करे।

यदि कोई झूठ बोलता है, दूसरों से द्वेष करता है और निंदा करता है तथा कटु वचन बोलता है तो जान लेना कि अभी उसने उच्च ज्ञान प्राप्ति का मार्ग नहीं सीखा और आरंभ भी नहीं किया चाहे वह कितना ही विद्वान हो। ज्योतिष तथा तंत्रशास्त्र, मंत्र शास्त्रादि में निपुण हो यदि असत्य भाषण और दूसरों की निंदा करता है तो उच्च जीवन से कोसों दूर है।

उच्च जीवन के लिये प्रेम-शील, संतोष-हर्ष-सरलता-नम्रता - सभ्यता - सत्यता-पवित्रता-दयालुता-निस्वार्थता आवश्यक है। झूठी निंदा करने से आत्मोन्नति नहीं हो सकती। झूठ बोलने वाला केवल अपने को ही दोषी नहीं बनाता बल्कि सुनने वाले को भी दूषित करता है—

उच्च जीवन प्राप्ति के अर्थ किन बातों की आवश्यकता है? प्रेम, शील, संतोष, हर्ष, सरलता, नम्रता, सभ्यता, सत्यता पवित्रता, दयालुता, निस्वार्थता, इन गुणों की आवश्यकता है। जो इन गुणों का अभ्यास करता है वह शीघ्र ही उच्च जीवन को प्राप्त होता है। अभ्यास बिना अन्य उपाय नहीं।

झूठ बोलते अरु दूसरे की निंदा करते हुये कोई भी आत्मोन्नति नहीं कर सकता। स्वार्थपरता अरु द्वेष से ही मनुष्य दूसरों की निंदा और असत्य भाषण करता है। पर निंदा झूठ से अधिक है। क्योंकि पर निंदा के साथ क्रोध का आवेश रहता है। इससे जो दूसरे की निंदा करता है वह अवश्य उससे द्वेष रखता है। निंदा करने वाला मनुष्य ऊपर से अपने को ऐसा निर्दोष प्रकट करता है और अपने कपट को ऐसा बना कर कहता है कि कितने ही भोले-भाले मनुष्य उसके जाल में फँस जाते हैं।

झूठ बोलने वाला केवल अपने को ही बुराई में नहीं डालता किन्तु सुनने वाले को भी पाप रूप कीचड़ में डालता है। इससे झूठ बोलना जितना दूषित है उतना ही सुनना भी दूषित है। कारण जब तक सुनने वाला न हो तब तक बोलने वाला कुछ नहीं कर सकता। इससे जो दूसरे से किसी की निंदा सुनता है अरु सुनके विश्वास करता है और तदनुसार उसके प्रति द्वेष करता है वह भी निंदक के समान दोष भागी होता है। केवल अंतर इतना ही है कि निंदा करने वाला स्पष्ट बुराई करता है और निंदा सुनने वाला चुपके-चुपके बुराई करता है। फल में दोनों बराबर हैं। यदि दूसरे की बात सुनकर उस पर विश्वास न करो किन्तु उस पर विचार करो तो बुराई पैदा ही नहीं हो सकती।

परन्तु आपत्ति यह है कि जहाँ किसी ने कहा कि अमुक तुम्हारी निंदा करता था, इतना सुनते ही क्रोध से लाल-पीले हो गये किन्तु यह विचार भी न किया कि वह मेरी बुराई क्यों कर रहा था। बुराई का कोई कारण है या नहीं तुम वृथा दूसरे के कहने से अपने को दुःखी करते हो और दूसरे को दोष देते हो। मुख्य तो यह है कि तुम आप अपने दुःख का कारण बनते हो। सच्चा धर्मात्मा पुरुष चाहे कोई उसके सामने भी कुछ कहे परन्तु वह कभी विश्वास नहीं करता। इसका कारण यह है कि वह कभी किसी की बुराई नहीं करता। बुराई सुन कर वह बुरा मानता है जो दूसरों की बुराई करता है।

पवित्र जीवन बनाने के
लिये सत्य भाषण सबसे
पहला कर्तव्य है।

पवित्र जीवन बनाने के लिये सत्य भाषण सबसे पहला कर्त्तव्य है। यदि संसार के दुःखों को कम करने की इच्छा हो

तो झूठ बोलना और दूसरों की निंदा करना छोड़ दे तथा उसके विचार भी मन में न आने दे और न दूसरों से किसी की निंदा सुने। परन्तु बुराई करने वाले पर दया करनी चाहिये। देखो कैसा मूर्ख है कि वृथा दूसरे की निंदा करके अपने को दुःख में डालता है क्योंकि झूठा मनुष्य कभी सत्य के आनन्द को नहीं पाता और दूसरे की निंदा करने वाला भी कभी शाँति को नहीं प्राप्त कर सकता।

❀ सत्य ज्यों का त्यों बना रहता है उसमें परिवर्त्तन नहीं होता।

सुखप्राप्ति का मार्ग—
"विश्वास और दृढ़ संकल्प"

अपने मन पर अधिकार होने से मानसिक शक्तियों का वश में होना भयभीत होकर चिन्ता में पड़े रहना, नाश का कारण है।

जो अपने को वश में करना जानता है उसे अपनी भीतरी मानसिक शक्तियों का ज्ञान हो जाता है और धीरे-धीरे उन्हें सन्मार्ग पर लगाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

जितना तुम अपने मन पर अधिकार प्राप्त करोगे और अपनी मानसिक शक्तियों को वश में करोगे उतना ही वाह्य वस्तु पर और घटनाओं पर तुम्हारा अधिकार हो जायगा।

सदा संदेह में पड़े रहना अरु निरन्तर भयभीत रहना तथा रात-दिन चिन्ता में तत्पर रहना श्रद्धाहीन का लक्षण है। उसके भाव और विचार उसके वश में नहीं है इससे वह अपने काम का ठीक प्रबन्ध नहीं कर सकता अरु घटनाओं का दास बना रहता है। ऐसे मनुष्य को विपत्ति शिक्षा देती है। इससे बहुत-कुछ अनुभव करने पर निर्बलता से बल प्राप्त होता है।

श्रद्धा तथा दृढ़ संकल्प जीवन की मुख्य प्रेरक शक्तियाँ हैं। संसार में कोई कार्य ऐसा नहीं है जो पूर्ण विश्वास और दृढ़ संकल्प से पूरा न हो सके। प्रतिदिन विश्वास के बल से

मानसिक शक्तियाँ एकत्र हो जाती और प्रतिदिन संकल्प की दृढ़ता से वे शक्तियाँ कार्य पूरा करने की ओर लग जाती हैं।

संसार में तुम चाहे किसी स्थिति में हो उस समय तक किसी अंश में शक्ति लाभ और सफलता की आशा नहीं कर सकते जब तक तुम शान्ति और सन्तोष के द्वारा अपनी मानसिक शक्तियों को एक ओर लगाना न सीखो।

भयभीत होकर चिन्ता में पड़े रहना नाश का कारण है। ऐसी चिंतित अवस्था में निरन्तर रहने से मानसिक शक्तियाँ दब जाती हैं। इससे प्रातःकाल उठते ही या संध्या समय अवकाश पाने पर दो चार घड़ी किसी एकांत स्थान पर जाओ जहाँ कोई बाधा न हो, वहाँ स्वस्थ बैठ कर अपने मन को बलात्कार से चिन्ता रहित करके किसी उत्तम सुखदायक वस्तु की ओर लगाओ तो तुम्हारा मन शनैः-शनैः शान्ति को प्राप्त होकर चिन्ता जाती रहेगी। फिर जब अपने मन को चिन्ता की ओर जाते देखो तब वहाँ से हटा के बलात्कार से शान्ति अरु सन्तोष की ओर लगाओ। जब हृदय में पूर्ण रूप से शान्ति आ जाय तब निर्भय होकर पूर्ण विचार शक्ति को स्पष्ट रूप से देख सकोगे कि कठिनाई को दूर करने का कौन सा सरल उपाय है और कैसे इच्छा फल प्राप्त हो सकेगा।

कुछ काल अभ्यास करने से अवश्य सफलता प्राप्त होगी—जो शान्त अवस्था में मार्ग दिखाई पड़े उसी पर लगे रहना चित्त को विचलित नहीं करना।

यद्यपि कुछ काल निरन्तर ऐसा अभ्यास करना पड़ेगा परन्तु दृढ़ता से अपने काम में लगे रहने से अवश्य सफलता

होगी। शान्ति के समय जो मार्ग तुम्हें दिखाई दे उसी में प्रवृत्त होना चाहिये।

सम्भव है कि तुम अपने दिन के कार्य व्यवहार में लगो और भय चिन्ता तुम्हें सतावे; तो तुम यह सोचने लगोगे कि यह मार्ग ठीक नहीं है। इसके अनुसार चलना मूर्खता है परन्तु ऐसे विचारों को अपने मन में स्थान न दो। जो बातें तुम्हें शान्ति अवस्था में सूझी थीं उन्हीं के अनुसार काम करो। भय चिन्ता के विचारों की ओर मत जाओ। शान्ति समय सब बातें साफ मालूम होती हैं उस समय विचार शक्ति भी निर्दोष होती है। ऐसे मन को सधाने से भिन्न-भिन्न विचार शक्तियाँ जो इधर-उधर तितर-बितर हो रही हैं एकत्र होकर विचारणीय विषय की ओर लग सकती हैं और कठिनाई को दूर कर सकती हैं।

संसार में कोई भी काम ऐसा नहीं है जो एकाग्रचित्त और शान्ति से करने पर सहज में न हो और ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आत्मिक शक्तियों को सावधानी से और बुद्धिमानी से काम में लाने पर प्राप्त न हो।

जब तक मनुष्य अपनी मानसिक अवस्था का ध्यान पूर्वक विचार नहीं करता है तब तक उसे विचार शक्ति की प्रबलता का अनुमान नहीं होता—प्रत्येक विचार तीर के समान है उसमें जितनी शक्ति होगी उतना ही असर दूसरे के मन में

करेगा; स्वार्थ अरु
अशान्ति के विचार,
नाशक शक्तियाँ हैं, अपने
मन को उत्तम विचारों
से भरो।

जब तक मनुष्य अपनी भीतरी अवस्था का ध्यानपूर्वक विचार नहीं करता और अपने भीतरी शत्रु क्रोधादि तथा वासनाओं को जय नहीं करता तब तक उसको विचार शक्ति की प्रबलता का ठीक-ठीक अनुमान नहीं हो सकता। प्रत्येक विचार जो तुम्हारे मन में आता है वह तीर के समान है उसमें जितनी शक्ति की तेजी होगी उसी के अनुसार दूसरों के हृदय में जाकर असर करेगा फिर लौट के अपना बुरा या भला असर तुम पर डालेगा।

एक मन का दूसरे के मन से परस्पर सम्बन्ध होता है और विचार शक्तियाँ बराबर एक दूसरे में आती-जाती हैं।

स्वार्थ और अशान्ति के विचार नीच और नाशक शक्तियाँ हैं। वो दूसरों के मन में दुष्टता उत्पन्न करके उन्हें बढ़ाने के लिये भेजे जाते हैं परन्तु उनके मन इन दुष्ट विचारों को और अधिक प्रबल बना कर उलटा तुम्हारे पास भेज देते हैं। इससे विरुद्ध पवित्रता तथा निस्वार्थता और शान्ति के विचार इस पृथ्वी पर सुख, शान्ति और ऐश्वर्य लाते हैं और दुष्ट तथा हानिकारक शक्तियों को रोक कर अरु शोक सन्ताप को नाश करके हर्ष और आनन्द उत्पन्न करते हैं और जो मनुष्य निराशा रूप गड्ढे में पड़ते हैं उन्हें मुक्ति की आशा दिलाते हैं।

अपने मन में उत्तम विचारों को स्थान दो। वे विचार शीघ्र ही तुम्हारे वाह्य जीवन में उत्तम अवस्था रूप में प्रगट होंगे।

उत्तम मनुष्य इन्द्रियों को वश में रखता है और बुरा इन्द्रियों के वश में रहता है। यदि संसार में सुख और शान्ति चाहो तो राग द्वेषादिकों को और दुष्ट वासनाओं को कम करो—ध्यान का लक्षण; ध्यान से अपनी तितर-बितर हुई शक्तियों को एकत्र करना।

अपनी आत्मिक शक्तियों को अपने वश में रक्खो उससे जैसे चाहो वैसे बन सकोगे। अच्छा पुरुष इन्द्रियों को अपने वश में रखता है और बुरा इन्द्रियों के वश में रहता है। इतना ही अन्तर है। यथार्थ शक्ति और स्थायी सुख की प्राप्ति के लिये इन्द्रिय दमन के बिना अन्य उपाय नहीं है। जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं करता वह सदैव निर्बल और दुखी रहता है।

यदि तुम संसार में सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहते हो तो राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मानसिक कषायों को और वासनाओं को कम करो। जितना तुम अपनी मानसिक अवस्थाओं के आधीन रहोगे उतना ही तुम दूसरों के आश्रय रहोगे और वाह्य सहायता की इच्छा करोगे। यदि तुम शान्ति और दृढ़ता से जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो अपने मन की सम्पूर्ण बाधा डालने वाली अरु समय-समय पर बदलने वाली अवस्था को अपने वश में करना सीखो।

नित्य एकांत में बैठ कर अपने चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करो। इसी का नाम ध्यान है। ध्यान करने से चिन्त

दूर होकर मन में शान्ति उत्पन्न होती है और निराशा तथा निर्बलता के विचार निकल कर दिव्यशक्ति और आशा का संचार होता है। जब तक तुम्हें ऐसा करने में सफलता न होगी तब तक तुम अपने उद्देश्यों में मानसिक शक्तियों से सफलता पूर्वक काम लेने की आशा नहीं कर सकते।

यह ऐसा उपाय है कि इससे मनुष्य अपनी भिन्न-भिन्न तितर-बितर हुई शक्तियों को एक निश्चित मार्ग पर लगा सकता है। और जो चाहे सो कर सकता है। जितना तुम अपने भावों और इच्छाओं तथा विचारों को अपने वश में करने में सफलता प्राप्त करोगे उतना ही तुम अपने भीतर एक नवीन अव्यक्त शक्ति उत्पन्न होते देखोगे और तुम्हें शान्ति तथा बल प्राप्त होगा। तुम्हारी भीतरी अव्यक्त शक्तियाँ स्वयमेव प्रगट होने लगेंगी।

पहले जो उद्योग निष्फल रहता था सो पुरुषार्थ द्वारा अभ्यास से सफलता को प्राप्त होगा—जितना परिवर्तन आंतरिक अवस्था में होगा उतना ही वाह्य अवस्था में भी होगा, यह शक्ति स्वतः सूर्यवत् दूसरों पर प्रभाव डालती रहेगी और तुम्हें इसका ज्ञान भी न होगा दिनोदिन तुम्हारा प्रभाव बढ़ता जायगा, जो अपने को उपयोगी और बलवान बनाना चाहे वह

अपने गंदे विचारों को
अपने मन में न आने दे।

पहले तुम्हारा उद्योग निर्बल अरु निष्फल रहता था परंतु अब तुम शांत चित्त होकर काम करने लगोगे इससे अवश्य सफलता प्राप्त होगी और अज्ञान रूप अंधकार दूर होकर ज्ञान रूप प्रकाश उत्पन्न होगा। इससे तुम भावी घटनाओं को पहले ही जान लोगे और अपने श्रम तथा उद्योग का फल ठीक-ठीक पहले ही जान सकोगे।

जितना परिवर्तन तुम्हारी आंतरिक अवस्था में होगा उतना ही तुम्हारे वाह्य कार्यों में भी होगा। एवं दूसरों के प्रति तुम्हारी मानसिक अवस्था में जितना परिवर्तन होगा उतना ही तुम्हारे प्रति उनके मानसिक अवस्था में भी परिवर्तन होगा।

जितना तुम विचार की नीच, पतित, निर्बल शक्तियों पर विजय प्राप्त करोगे उतनी उच्च, पवित्र, प्रबल विचारों से उत्पन्न होने वाली शक्तियाँ तुम्हारे भीतर प्रगट होंगी। उस समय तुम्हारे हर्ष की कोई सीमा न रहेगी। यह बल, इन्द्रिय निग्रह और मन के विजय से ही प्राप्त होता है।

यह शक्ति और आनंद स्वतः स्वयमेव सूर्यवत् दूसरों पर प्रभाव डालते रहेंगे तुम्हें इसका ज्ञान भी न होगा। दृढ़ चित्त मनुष्य स्वतः तुम्हारे चारों ओर जमा रहेंगे और तुम्हारा प्रभाव दिन-दिन बढ़ता जायगा। जितना तुम्हारे विचारों में परिवर्तन होगा उतना ही तुम्हारे वाह्य जीवन में भी परिवर्तन होगा।

जो अपने को उपयोगी तथा बलवान बनाना चाहता है और प्रसन्नचित्त रहना चाहता है वह अपने गंदे घृणित विचारों को अपने मन में न आने दे। जैसे कोई बुद्धिमान पुरुष अपने सेवकों पर शासन और मित्रों का आमंत्रण करता है वैसे ही

गंदे विचारों को रोके और अच्छे विचारों को अपने मन में आने दे और अपनी अयोग्य और कुत्सित इच्छाओं को मन से रोके और अपने वश में करे।

जो अपनी इन्द्रियों को वश करके इच्छा निरोध में तनिक भी सफलता प्राप्त करता है उसकी बहुत शक्ति बढ़ जाती है—जहाँ दृढ़ विश्वास है वहाँ शक्ति, स्वास्थ्य अरु सफलता तीनों प्राप्त होती हैं, यदि बीमारी से बचने की इच्छा है तो अपने मन को चिन्ता रहित करो और विचारों को एक ओर लगावो।

जो अपनी इन्द्रियों को वश करके अपनी इच्छाओं का निरोध करने में तनिक भी सफलता प्राप्त करता है उसकी बहुत कुछ शक्ति बढ़ जाती है और जो स्वार्थपरता तथा इन्द्रिय लोलुपता को बिलकुल निकाल देता है वह अपने विचारों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेता है। उसके अंतर में अपूर्व शक्ति और शांति का प्रादुर्भाव होता है और उसके बुद्धि का विकास होता है जिसका विषयी पुरुषों को स्वप्न में भी अनुमान नहीं हो सकता।

जैसे सूर्य के प्रकाश में अंधकार समूल नष्ट हो जाता है वैसे विशुद्ध हृदय और दृढ़ विश्वासी के प्रबल विचारों की

सर्वव्यापी किरणों के आगे बुराई की समग्र निर्बल शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उनका कहीं चिन्ह भी नहीं रहता।

जहाँ दृढ़ विश्वास, सम्यक श्रद्धा अरु पवित्रता का सद्भाव होता है वहाँ शक्ति, स्वास्थ्य अरु सफलता तीनों प्राप्त होती हैं। ऐसी अवस्था में रोग, आपदा अरु असफलता कदापि नहीं ठहर सकतीं क्यों कि उनकी सहायक कोई वस्तु वहाँ नहीं होती।

यदि तुम क्रोध, मान, माया, लोभ, द्वेष वा अन्य किसी वासना के अधीन रहते हो और इस बात की आशा रखते हो कि हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहे ऐसा कदापि नहीं हो सकता क्यों-कि तुम तो निरंतर बीमारी के बीज बो रहे हो।

अपने मन से द्वेष, भय, शंका, चिन्ता तथा स्वार्थ के विचारों को बिलकुल निकाल दो तो शीघ्र स्वस्थ होगे, बहुतों का कथन है कि अधिक परिश्रम से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है यह केवल भूल है।

यदि तुम बीमारी से बचना और पूर्ण रूप से स्वास्थ्य चाहते हो तो अपने मन को चिंता रहित करो और अपने विचारों को एक ओर लगाओ। हर्ष अरु आनंद के विचार मन में लाओ। प्रेम और वात्सल्य के विचार मन में लाओ और नेक-नियती का नस-नस में असर होने दो फिर तुम्हें किसी औषधि की आवश्य-कता नहीं होगी। अपने मन से द्वेष, भय, शंका, चिंता तथा

स्वाथ के विचारों को बिलकुल निकाल दोगे तो तुम्हारी अजीर्ण, मंदाग्नि आदि सब तत्काल दूर हो जायँगी। परन्तु यदि हठ से दुर्वासनाओं को अपने मन से न निकाल दोगे तो इस बात की शिकायत न करना कि हमारा शरीर व्याधियों से ग्रसित है। एक मनुष्य किसी भारी रोग में ग्रसित था उसने कई वैद्यों की औषधि की। कुछ लाभ न हुआ। तब रोग नाशक जलवायु के स्थान में गया। वहाँ भी कुछ लाभ न हुआ तब उसने रात में स्वप्न में एक देव को देखा। देव ने कहा, तुम सब उपाय कर चुके। उसने कहा कि हाँ। तब देव ने कहा हमारे साथ आओ। हम एक सरोवर दिखावेंगे उसमें स्नान करने से सब क्लेशों से रहित हो जाओगे। ऐसा कह कर देव उसे उसी सरोवर पर ले गया और आप गुप्त हो गया। रोगी ने सरोवर में डुबकी लगाई बाहर निकलते ही सब रोग उसका जाता रहा। इतने में तट पर त्याग शब्द लिखा देखा। बस इतने में ही आँख खुल गई। फिर विचार करने से उस स्वप्न के शब्द का अर्थ समझ गया। जाना कि अब तक कुविचारों से इतना क्लेश भोगना पड़ा। इससे उसने पश्चात्ताप किया और प्रतिज्ञा की कि अब मैं जन्म भर के लिये ऐसे विचारों का त्याग करता हूँ। तब उसी समय से वह बिलकुल अच्छा हो गया।

बहुत लोगों का यह सिद्धान्त है कि अधिक काम करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है। ऐसा नहीं किन्तु बहुत लोग अपनी मूर्खता से अपनी शक्ति नष्ट कर देते हैं। यदि तुम अपना स्वास्थ्य चाहते हो तो शांतचित्त हो के काम करो। चिंता करना, घबराना अथवा जरा सी बात को बढ़ा के व्यर्थ क्रोधादि करना स्वास्थ्य को हानिकर और रोग को स्वयं बुलाना है। काम चाहे शारीरिक हो चाहे मानसिक हो, सदा सब उपयोगी अरु स्वास्थ्यप्रद होता है।

जो भय, चिंता से छूट कर अपने मन को सब वस्तुओं से हटा कर जो काम सामने आवे उसी में मन लगाकर शांति से काम करता है वह केवल काम ही अधिक नहीं करता किंतु अपने स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रखता है। इसके विरुद्ध जो सदा भय, चिंता में डूबा रहता है उसका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ जाता है। स्वास्थ्य और सफलता दोनों का कार्य-कारण सम्बन्ध हैं। अर्थात् जिसका स्वास्थ्य अच्छा है उसे अवश्य सफलता होगी। जैसे मानसिक अवस्था उत्तम होने से शारीरिक अवस्था भी उत्तम होती है वैसे ही मन के द्वारा मनुष्य अपने कार्य की सफलता प्राप्त कर सकता है।

यदि तुम वासनाओं को शान्ति पूर्वक निवृत्त करोगे तो तुम्हारा स्वास्थ्य, दुर्भाग्य और विपत्ति भी दूर हो जायगी; ईश्वर और ईश्वरीय नियमों पर विश्वास सफला का मुख्य साधन है।

यदि तुम अपने कषायों और वासनाओं को ही शांति पूर्वक निवृत्त करोगे तो तुम्हारा दुर्भाग्य और विपत्ति भी दूर हो जायँगी। परन्तु दृढ़ विश्वास अरु चित्त की प्रसन्नता ये दोनों सहायक पुष्ट होने चाहिये, अन्यथा विपत्ति से बचना कठिन है। केवल विश्वास के बल से कार्य की पूर्ति हो सकती है।

ईश्वर पर विश्वास और ईश्वरीय नियमों पर विश्वास तथा अपने कार्य पर विश्वास अरु अपनी शक्ति पर विश्वास करना सफलता का मुख्य साधन है।

—:०:—

विश्वास का लक्षण

विश्वास किसे कहते हैं। प्रत्येक दशा में अपने सर्वोच्च भावनाओं से काम लेना और अपने शुद्ध अंतःकरण पर श्रद्धा करना और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्भय होकर शांति पूर्वक उद्योग करना और भविष्य में हमारे प्रत्येक विचार तथा प्रत्येक कार्य का फल हमें अवश्य मिलेगा, और जो कुछ हमारा है उसका एक-एक कण हमें मिलेगा, इसका नाम सच्चा विश्वास है। ऐसे विश्वास के बल से सर्वप्रकार के संदेह दूर हो जाते हैं। अतएव सबसे पूर्व निःशंक श्रद्धा और आत्म-विश्वास के प्राप्त करने का उद्योग करो।

मूर्ख केवल इच्छा करके
सामान्य कर्म करते हैं जब
सफलता न हुई तब
बड़बड़ाने लगते हैं परन्तु
बुद्धिमान काम करके फल
की राह देखते हैं।

मूर्ख लोग केवल इच्छा करते हैं और जब उन्हें कुछ नहीं मिलता तब बड़बड़ाने लगते हैं। परन्तु बुद्धिमान काम करते हैं और फल प्राप्ति की राह देखते हैं।

चाहे तुम अपनी वर्तमान अवस्था से अप्रसन्न हो और तुम्हारा मन काम में न लगता हो तो भी तुम जहाँ तक हो अपने

कर्तव्य को श्रम और साहस से किये जाओ और अपने मन में यह विश्वास रक्खो कि इससे अच्छी अवस्था और अच्छे अवसर हमारी राह देख रहे हैं। इससे जब अवसर मिले अरु नया मार्ग दिखाई पड़े तब उस पर लग जाओ और बुद्धिमानी तथा सावधानी अरु दूरदर्शिता से काम करने को तैयार होकर उस नये काम में तन मन से उद्योग करो।

जो कुछ करो उसे तन मन से एकाग्रचित्त होकर करो। अपनी ओर से कोई कसर न करो। यदि छोटे-छोटे कामों को पूरी तौर से कर लोगे तो बड़े-बड़े काम भी अवश्य कर सकोगे। इस बात का सदा ध्यान रक्खो कि धीरे-धीरे उन्नति करते हुये ऊपर को चढ़ो। ऐसा करने से तुम कदापि नीचे नहीं गिर सकोगे। वास्तविक शक्ति प्राप्ति का यही मार्ग है। मूर्ख अपनी संपूर्ण मानसिक शक्ति को व्यर्थ की बकवास और स्वार्थ-युक्त बातों में खो देते हैं और बुरे कामों में भी अपनी शक्ति नष्ट करते रहते हैं।

यदि तुम प्रबल शक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो शान्ति, धैर्य, गम्भीरता से काम करना सीखो। दूसरों की सहायता की इच्छा न करो। सर्व शक्तियाँ स्थिरता और दृढ़ता से प्राप्त होती हैं। जो डरपोक विचारशून्य हैं और जिनमें बुद्धि तथा गंभीरता नहीं है वह दूसरों की सहायता से चलें। परन्तु जो शांत, गंभीर, बुद्धिमान, निर्भय, दूरदर्शी हैं वे यदि अकेले जंगल और पहाड़ों पर चले जायँ तो ईश्वर वहाँ भी उनकी शक्ति को बढ़ा देगा।

यदि यह शक्ति तुममें न
हो तो उसका अभ्यास करो
जबसे शक्ति के प्रादुर्भाव
का आरम्भ होगा तब ही
से बुद्धि बढ़ने लगेगी—
जितना मानसिक शक्ति
को बृथा समय नष्ट करने
से बचाओगे उतना ही
वास्तविक ज्ञान तुम्हें होगा,
सबसे उत्तम उपाय अपने
उद्देश्य की पूर्ति करना है,
यदि स्वार्थ के वश में रहोगे
तो दुःख उठाओगे ।

यदि तुममें यह शक्ति न हो तो उसका अभ्यास करो । जब से शक्ति के प्रादुर्भाव का आरम्भ होता है तब ही से बुद्धि बढ़ने लगती है । इससे छोटी-छोटी इच्छा जिनके वश में तुम हो रहे हो उन्हें प्रथम अपने वश करो । जैसे खिलखिला के मुँह फाड़ कर हँसना, व्यर्थ की बातें करना, दूसरों की हँसी उड़ाना । प्रथम इन बातों को छोड़ो, क्योंकि इनसे वृथा समय नष्ट होता है और कोई लाभ नहीं ।

एक विद्वान का कथन है कि जितना मानसिक शक्तियों को ऐसे वृथा समय नष्ट करने से बचाओगे उतना ही तुम्हें वास्तविक ज्ञान होगा और बड़ी-बड़ी वासनाओं को भी जय करने में समर्थ होगे ।

सबसे उत्तम उपाय यह है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति में तन, मन से लगो । कितनी ही आपत्ति तथा कठिनाई उपस्थित हो

परन्तु उद्देश्य पूर्ति के कार्य से पीछे न हटो। जिसका कोई उद्देश्य नहीं होता उसे सफलता नहीं हो सकती।

अपने को विशुद्ध और पवित्र रखने से तथा श्रद्धा और दृढ़ विश्वास से सफलता अरु स्वास्थ्य अवश्य प्राप्त होगा और अपने मन को वश में रखने से आत्म-बल और शक्ति भी आ जायगी।

स्वार्थ से बल, हर्ष और उसके साधन का भी नाश होता है—जितना स्वार्थ को छोड़ोगे उतनी ही पवित्रता, निःस्वार्थता, दया आदि उत्पन्न होंगे। सद्वि-चार, सुवचन सच्चरित्रता से उत्तम पद की प्राप्ति होती है। जितना स्वार्थ को छोड़ोगे उतना ही त्याग का आनन्द प्राप्त होगा, अपना काम करने से शारीरिक क्षीणता और इन्द्रिय शिथिलतादि होंगे और परोपकार से शक्ति वृद्धि ही होगी।

यदि तुम स्वार्थ के वश में रहोगे तो दुःख उठाओगे यदि स्वार्थ को त्यागोगे तो शान्ति प्राप्त करोगे।

स्वार्थ युक्त प्रत्येक वस्तु की इच्छा करने से केवल हर्ष और आनन्द का ही नाश नहीं होता किन्तु दोनों के साधन का भी नाश हो जाता है। जैसे पेटू और लालची पुरुष मरी हुई भूख

को तीव्र करने को नाना उपाय करता है तथापि क्लेशित और बीमार ही बना रहता है।

जितना तुम स्वार्थ को छोड़ते जाओगे उतना ही तुम में प्रेम, पवित्रता, निस्वार्थता, जीव मात्र पर दया भाव पैदा होता जायगा। ऐसे उन्नति करते-करते तुम ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त होगे। एक विद्वान का कथन है कि मैंने तीन पग में अनुपम सुख प्राप्त किया—एक सद्विचार, दूसरा सुवचन, तीसरा सच्चरित्रता। इसी मार्ग का अनुकरण करके तुम भी अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हो।

जितना तुम स्वार्थ और लोभ को छोड़ोगे उतना ही त्याग का आनन्द प्राप्त होगा। त्याग से तात्पर्य यह है कि तन मन धन से दूसरों की सेवा करना, उनसे प्रेम करना तथा अपने ज्ञान से लाभ पहुँचाना, परंतु उसमें स्वार्थ की किंचित गन्ध भी न हो और बदले की इच्छा भी न हो तथा किसी प्रकार नामवरी की इच्छा भी न हो; तब यथार्थ त्याग का फल होगा। यदि दूसरों के साथ भलाई अरु सहानुभूति करोगे तो उससे तुम्हारे हृदय में दूनी शक्ति बढ़ेगी और आनन्द मिलेगा। परन्तु जितना दूसरों से दूर रहोगे उतना ही आनन्द से रहित रहोगे। ऐसा करने से जब तुम्हारा हृदय कोमल हो जायगा, कठोरता दूर होगी तब तुम पर ईश्वरीय कृपा होगी।

यदि तुम अपने लिये दिन रात काम करो तो तुम्हें बोध होगा कि अब हम वृद्ध हो गये। हमारी इन्द्रियों ने जवाब दे दिया परन्तु यदि परोपकार करने में तुम्हारा समय व्यतीत होता है तो मरण पर्यंत तुम्हारी शक्ति वैसी ही बनी रहेगी और तुम्हारे चित्त का आनन्द युवावत् रहेगा।

—:०:—

चित्त की शांति का उपाय

मन को चंचल रखने से शान्ति नहीं होती; विचारशील पुरुषों में वासना नहीं होती; पक्षपाती अपनी ही बात को ठीक समझता है; शान्त-चित्त पक्षपात रहित होता है।

जो अपने मन को चंचल रखता है वह कभी शान्ति नहीं पाता।

विचारशील पुरुष में वासना नहीं पाई जाती। वह सबसे निष्पक्ष होकर शान्तचित्त से मिलता है। सम्पूर्ण संसार से वह प्रेम अरु सहानुभूति रखता है।

जो पक्षपाती होता है वह सदा यह जानता है कि जो मेरी राय है, मेरा पक्ष है, वही सत्य है। अन्य सब झूठ है। वह इतना भी विचार नहीं कर सकता कि दूसरे की बात में कुछ सार है या नहीं, वह सदा अपनी रक्षा और दूसरे पर आक्रमण करने के विचार में ही लगा रहता है। शान्ति और साम्य भाव का उसमें अंश भी नहीं रहता।

शान्तचित्त पक्षपात और कषाय तथा वासना को अपने मन में प्रवेश भी नहीं होने देता। वह सदा इसी उद्योग में रहता है। ऐसा करने से दूसरों से सहानुभूति बढ़ने लगती है और वह उनके चित्त की अवस्था को जानने लगता है। ज्यों-ज्यों उसे

दूसरों का ज्ञान प्राप्त होता है त्यों-त्यों वह जानने लगता है कि जो मैं दूसरों को दोषी ठहराता हूँ यह मेरी सरासर भूल है। ऐसे प्राणि मात्र पर प्रेम और उदारता का भाव उत्पन्न होने लगता है। संसार के सर्वथा जीव प्रेमपात्र बन जाते हैं।

जब मनुष्य स्वार्थ और कषाय तथा वासना के वशीभूत होता है तब उसके ज्ञानचक्षु बन्द हो जाते हैं और उन पर अज्ञान रूप पर्दा पड़ जाता है। उसे केवल अपने ही पक्ष में भलाई मालूम होती है। दूसरे का पक्ष सर्वदा झूठा प्रतीत होता है। उसका यह परिणाम होता है कि उसे किसी वस्तु का भी वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जब उसे अपना भी ज्ञान नहीं होता तब दूसरों की बात कैसे जान सकेगा। वह दूसरों की निंदा करने में ही भलाई समझता है। जो उसके पक्ष में नहीं होते हैं और जिनके विचार उससे नहीं मिलते वो उनसे अलग रहता है और अपने दूषित मन के निंद्य विचारों में डूबा रहता है।

शांत चित्त वाले व्यक्ति का समय बड़े सुख और आनन्द से कटता है। वह घृणा, द्वेष, संताप के मार्गों का परित्याग करता है। प्रेम, सहानुभूति, स्नेह, सुख अरु शान्ति के मार्गों का अवलम्बन करता है।

शान्त चित्त व्यक्ति का समय बड़े सुख से कटता है; शान्त अवस्था की प्राप्ति का उपाय इंद्रिय दमन है। टाल मटोल करने से सफलता नहीं होती। अपनी अवस्था तथा स्थिति के बनाने वाले आप ही हो।

मन की सर्वोत्तम शान्त अवस्था कैसे प्राप्त होती है—उसका केवल एक उपाय यही है कि इन्द्रियों का दमन। उसी से हृदय शुद्ध होता है अरु हृदय शुद्धि से ज्ञान प्राप्त होता है। और सम्यक ज्ञान से साम्यभाव और साम्यभाव से शान्ति मिलती है। यदि तुम दूसरों को सुधारना चाहते हो तो पहले अपने को सुधारो। केवल संकल्प मात्र मन में करने से लाभ नहीं किन्तु नित्य उसके छोड़ने का अभ्यास करो। ऐसे ही भलाई के संकल्प मात्र करने से कार्यसिद्धि न होगी किंतु शनैः शनैः उसका अभ्यास करना चाहिये।

जो कुछ प्राप्त करना चाहते हो सो आज ही प्राप्त कर सकते हो। परंतु सफलता इससे नहीं होती कि तुम स्वयं उसको टालते रहते हो। यदि दृढ़ निश्चय करके टालमटोल छोड़ के दृढ़ पुरुषार्थ करोगे तो अवश्यमेव शीघ्र ही सिद्धि होगी। तुम अपनी स्थिति, अवस्था के आप बनाने वाले हो। जितना विषय-वासनाओं में लिप्त होगे और सांसारिक पदार्थों की इच्छा करोगे उतना ही दुःख उठाओगे। जितना उनका त्याग करोगे उतना ही सुख पाओगे।

यदि तुम्हारे समझ में आ जाय कि द्वेष और क्रोध करने से शान्ति भंग होती है, संतोष की निवृति तथा दूसरों की भी हानि होती है तो निश्चय है कि तुम शीघ्र ही द्वेष अरु क्रोध के छोड़ने का अभ्यास करोगे। वैसे ही प्रेम में दूसरे को वश करने की शक्ति है अरु द्वेष को शीघ्र नष्ट कर देता है तथा दया और सुबुद्धि उत्पन्न होती है। ये दृढ़ निश्चय हो जाय तो तुम अवश्य प्रेम करने का अभ्यास करो। लोभ अरु पाप इन्द्रियों की स्वतंत्रता से होते हैं और धर्म अरु पवित्रता आत्मा की उच्चशक्तियों के प्रयोग से होते हैं। इससे जो वासना को जय करने का अभ्यास

करता है सो प्रथम इन्द्रियों को स्वतंत्र-विहार से रोके। अर्थात् विषयों में न जाने दे। ज्यों-ज्यों इन्द्रियों को अपने वश करेगा त्यों-त्यों उसे गुणों की प्राप्ति होगी और लोभ, वासना को उत्पन्न होते ही रोक सकेगा।

वासना के वेगों को शमन करना ही सर्वोत्तम उपाय है। कार्य आरम्भ के पूर्व मनुष्य कुछ देर ठहर जाय। दस संख्या गिनने में जितना काल लगे उतनी देर तक संभले रहना बड़ा लाभकारी होता है। ऐसे करने से वेगों की तीव्रता जाती रहती है।

वासना के वेगों को शमन करने का सर्वोत्तम उपाय है क्रोधी यदि पाँच मिनट हाथ चलाने से रुक जाय तो संभव है कि क्रोध निःशेष जाता रहे; वेगों की तीव्रता शान्त होने पर उससे निश्चेष्ट नहीं होना।

क्रोधी यदि ५ मिनट हाथ चलाने से रुक जाय तो संभव है क्रोध बिलकुल जाता रहे। साथ ही चित्तवृत्ति को दूसरी ओर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

वेगों की तीव्रता शान्त होने पर उससे निश्चिन्त न होवे किन्तु जिन-जिन उपायों से वेगों की शान्ति हो उनका बारम्बार विचार करे फिर देखे कि जो अयोग्य इच्छा उत्पन्न हो उससे तुम्हारी तथा दूसरों की क्या हानि होगी। जो धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र को भिन्न बताते हैं और कहते हैं कि खान-पान, रहन-

सहन कैसा भी हो तथापि मनुष्य धर्मात्मा बन सकता है ऐसे मनुष्यों की युक्तियों पर कदापि विश्वास न करे। क्योंकि इनका सिद्धान्त यही है "ऋण कृत्वा घृतं पिबत्" इससे शुद्ध शास्त्रोक्त आचरण करने से ही व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि होगी।

❀ इन्द्रिय दमन से हृदय शुद्धि; हृदय शुद्धि से सम्यक् ज्ञान; सम्यक् ज्ञान से साम्य भाव और साम्य भाव से शान्ति की प्राप्ति होती है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता

स्वभाव डालने में दृढ़ प्रतिज्ञा, बारम्बार आवृत्ति, बाधाओं की निवृत्ति की आवश्यकता; विचार उत्पन्न करने को अच्छी मानसिक वासनाओं की अपेक्षा है। स्वभाव सदा बदलता रहता है; सूक्ष्म होने से जान नहीं पड़ता, जीवन साफल्य के लिये विश्वास भी आवश्यक अंतःकरण शुद्धि के लिये आचार विहार को सुधारना चाहिये।

प्राकृतिक वासनाओं में कई वासना तो ग्राह्य हैं जैसे सत्य भाषणादि फिर भी जितनी कम हो सके उतनी ही श्रेयकर हैं।

स्वभाव डालने में प्रथम तीन बातों की आवश्यकता है। प्रथम नियम रूप से बारम्बार आवृत्ति। द्वितीय दृढ़ प्रतिज्ञा। तृतीय बाधाओं की निवृत्ति।

विचार उत्पन्न करने में अच्छी मानसिक वासनाओं की अपेक्षा है। क्योंकि स्वभाव पर विचारों का बड़ा असर पड़ता

है। निरन्तर भावना करते-करते कार्य सिद्धि होता है। अतः जैसे शरीर के स्वास्थ्य के निमित्त खान-पान उत्तम आहार की आवश्यकता है वैसे नैतिक आचरण और मानसिक उद्योग की उन्नति के लिये अनुकूल स्वभाव की आवश्यकता है।

स्वभाव सदैव बदला करता है। सूक्ष्म होने से मनुष्य इसे स्वाभाविक रूप से नहीं जान सकता। अतः सर्वदा सावधानी से देखते रहना चाहिये कि इसकी गति किस ओर हो रही है। मानवीय जीवन की सफलता के लिये विश्वास की सबसे पहले आवश्यकता है। जिन्हें यह शंका हो कि अमुक कार्य असंभव है तथा शक्ति से बाहर है उनसे वह काम कभी नहीं हो सकता। अतः यह मानना निस्संदेह दुर्बलता का सूचक है।

अन्तःकरण को शुद्ध करने की इच्छा हो तो प्रथम अपना आहार-विहार सुधारना चाहिये। क्योंकि आहार से ही शरीर का गठन होता है और आहार से ही मन बनता है तथा शरीर का भी असर मन पर होता है। इससे तमोगुणी रजोगुणी मलीन वस्तु नहीं खाना तथा ठूँस-ठूँस के भी नहीं भरना और अधर्म से उपार्जन किया द्रव्य का अन्न नहीं खाना तथा निरन्तर खाने-पीने ही की धुन में नहीं लगे रहना। किन्तु यह समझना कि केवल खाने-पीने के लिये हमारा जन्म नहीं हुआ है। केवल शरीर धारणार्थ खाना है ऐसा समझ कर मिताहारी होना। सात्विक पदार्थों का सेवन करना। वैसे ही वस्त्रादि में रीति भाँति, हाव-भाव, आचार-विचार, चाल-चलन, आदि प्रत्येक विषय में नियमित रहना, सत्यता, पवित्रता नम्रता रखना। तभी अन्तःकरण पवित्र होगा और उत्तम तथा गम्भीर विचार उत्पन्न

होंगे। इससे ही दूसरे बाहर के विचारों को खींचने की सामर्थ्य होगी।

विचार शक्ति को विकसित करना हो तो प्रथम एक ही प्रकार के विचार को दृढ़ता से बारम्बार करे। अरु दीर्घ काल तक करे। तब वह विचार विकसित होकर खिल सकता है।

विचार शक्ति विकसित करने के लिये एक ही प्रकार के विचार करना; बुरे विचारों के नाशार्थ अच्छे विचार पुष्टता से करना चाहिये।

अच्छे विचारों को बहुत दृढ़ता से करने से बुरे विचारों का बल घट जाता है। जैसे क्रोध के विचार पूर्व किये हों तो उसके नाशार्थ शान्ति के विचार दृढ़ता से करना। लोभ के विचारों के नाशार्थ सन्तोष और उदारता के विचार अधिक करना; द्वेष के विचारों के नाशार्थ प्रेम के विचार और अभिमान के निवृत्यर्थ नम्रता के विचार करना। भय के विचार निवृत्यर्थ निर्भय पुरुषों के विचार अधिक करना चाहिये।

दुःख के विचारों के नाशार्थ सुख के विचार; ऐसे ही अन्य बुरे विचारों के नाशार्थ उसके विरोधी विचारों को करना और उन ही विचारों को दृढ़ता पूर्वक बढ़ाना।

जितने बुरे विचार किये हों उससे अधिक अच्छे विचार करे, तब उनका बल क्षीण होकर अच्छे विचारों की वृद्धि होगी।

उत्तम विचारों का बल अधिक होता है अपनी इच्छाशक्ति को प्रथम दृढ़ करना चाहिये; शरीर बदलने से स्वभाव नहीं बदलता।

स्वार्थ के विचारों से परमार्थ के विचारों का असर बहुत गम्भीर तथा पुष्ट होता है।

हलके विचार बहुत हों अरु उत्तम विचार थोड़े हों तो भी उत्तम विचारों का बल बढ़ जाता है। इससे उत्तम विचार अधम विचारों को तोड़ डालते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं और आश्चर्य भी नहीं किन्तु स्वाभाविक है। इसी से पंचाक्षरी, द्वाक्षरी, षडक्षरी, द्वादशाक्षरी नामोच्चारण से ही भावनावश बड़े-बड़े पापी तर गये। ऐसी सारी उमर दुष्ट विचार किये हों परन्तु जब श्रद्धा पूर्वक परमार्थ के विचार करे तो थोड़े काल में कल्याण हो जाता है। इससे कदापि निराश नहीं होना कि जन्म भर तो बुरे विचार किये अब थोड़े काल के शुभ विचारों से क्या होगा।

जो विचार करना सो मन वाणी से तन्मय होकर करना तथा प्रेम पूर्वक करना परन्तु उस समय अन्य दुष्ट विचारों को बिल्कुल उठने नहीं देना। निष्काम भाव से विचार करना और उसी विचारों में तन्मय हो जाना। प्रथम अपनी इच्छाशक्ति को दृढ़ करना क्योंकि इच्छाशक्ति ही विचारों को वश में रखने वाली शक्ति है। इससे प्रथम अपनी इच्छाशक्ति को बढ़ाना चाहिये।

शरीर बदलने से स्वभाव नहीं बदलता शरीर बदलना तो वस्त्र बदलने की न्याईं है। जिसने जीवित अवस्था में चोरी के विचार किये हैं मरने पर प्रेम लोक में चोरी के ही विचार करता है वैसे ही जो क्रोध या लोभ के विचार करता है वह परलोक में

क्रोधादि के विचार करता है और जो यहाँ प्रेम भजन ईश्वराधन-परोपकार के विचार करता है सो स्वर्गादिमें वही विचार करता है, क्योंकि मरने पर केवल शरीर का नाश होता है जीव नाश नहीं होता तथा जीव में जो विचार शक्ति है सो भी शरीर नष्ट हुये नाश नहीं होती जैसा जीवितावस्था में विचार किया है मरणांतर वही स्वभाव है, जिसने जीवितावस्था में पुण्य के विचार किये हैं सो पश्चात भी पुण्य ही के विचार करता है। वैसे ही पाप के भी जानना।

मानसिक शरीर को स्थूल शरीर बहुत सहायता देता है। इससे प्रथम स्थूल शरीर की आरोग्यता का उपाय करना चाहिये। इच्छा शक्ति को विकसित करने के लिये अपना मानसिक शरीर सूक्ष्म बनाने का उपाय करना क्योंकि जब स्थूल शरीर की जड़ता घटेगी तब ही सूक्ष्म शरीर का बल बढ़ेगा, मानसिक शरीर स्थूल के आधार पर है। यदि स्थूल शरीर निरोग हो तो सूक्ष्म शरीर का बल बढ़ता है। इससे प्रथम स्थूल शरीर में कोई रोग न हो। न मोटा हो न बहुत कृश हो। इसके खाने-पीने, बैठने, पहरने-ओढ़ने तथा दूसरों का सङ्ग करने में बहुत सोच-समझ के काम करना चाहिये।

मन में उठने वाले संकल्पों को रोके अरु मन को स्थिर करे तभी बाहर के विचार आ सकते हैं—भिन्न-भिन्न वृत्तियों से मन का बल व्यर्थ चला जाता है इस बल को रोकने से ही कार्य-सिद्धि होती है, अपने मन को परखने की रीति—हम भक्तिमार्ग में आगे बढ़े या नहीं ये जानने की रीति।

जब ये सब काम सुधरें तब मानसिक शरीर सूक्ष्म हो सकता है। इससे प्रथम रजोगुणी-तमोगुणी आहार का त्याग तथा तुच्छ संकल्प, काम, क्रोध लोभादि विकारों की निवृत्ति और ईश्वर सम्बन्धी शुभ कर्मों की प्रवृत्ति ऐसा करने से इच्छाशक्ति बलवान होती है। इससे स्थूल शरीर को निकम्मा जान कर उससे लापर-वाही नहीं करना किन्तु निरोग रहने का और शुद्ध रहने का उद्योग करना, मन में उठने वाले संकल्पादिकों को रोके और मन को स्थिर करे तभी बाहर के उत्तम विचार आ सकते हैं। जैसे स्थिर जल में प्रतिबिम्ब पड़ता है, हिलते में नहीं पड़ता, वैसे ही स्थिर चित्त में बाहर के विचार खींचे जा सकते हैं।

भिन्न-भिन्न वृत्तियों से मन का बल व्यर्थ चला जाता है। इससे इस बल को रोकने ही से कार्य-सिद्धि होगी। जैसे नदी का प्रवाह कई मार्गों से जाने से कोई कार्य नहीं होता वही प्रवाह अन्य मार्गों को रोक कर एक ओर किया जाय तो नौकादि सर्व कार्य में लाभ हो सकता है।

अपने मन को परखने की रीति यह है कि जब ईश्वरा-राधन करने बैठे तब शाँतचित्त में अपनी वृत्तियों को देखे। उस समय जो-जो संकल्प बारबार उठें उन्हीं को दोष रूप जाने उनकी निवृत्ति का उपाय करे।

धन प्राप्ति की इच्छा, मान प्रतिष्ठा की इच्छा, अभिमान, मद, मात्सर्य, क्रोध, लोभ, मोह, असत्यभाषण, कटु वचन तथा दुर्व्यसनों में भांग, अफीम, चाय, बीड़ी, तमाखू आदि तरह-तरह के कपड़े पहनना, समय-समय पर भोजन, निद्रा आदि पूर्व के व्यसनों की न्यूनता हुई कि नहीं इसका नित्य विचार करना और इन दुर्व्यसनों को घटाने का अभ्यास करना।

❀ *शरीर परिवर्त्तन से स्वभाव परिवर्त्तन सम्भव नहीं; स्वभाव परिवर्त्तन के लिये अच्छे विचारों को मन में स्थान देना चाहिये।*

एकाग्रता—"दिव्य शक्ति"

आरम्भ में इष्ट मूर्ति का ध्यान करने का अभ्यास करे, प्रथम शुद्ध सांस ले इससे ध्यान लगता है—प्राणायाम में ज्यादा देर तक रोकने का यत्न न करे, सब क्रिया स्वाभाविक होने दे, नाभि वा हृदय से सांस ले। प्रथम १० मिनट तक इष्ट मंत्र का जप करे तथा अर्थानुसंधान करे पश्चात् एक मिनट समाधान करे, पीछे शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ावे।

आरम्भ में अपने इष्ट मूर्ति को सम्मुख रख के मन में ध्यान करने का अभ्यास करे। यदि ऐसे ध्यान करने पर चित्त स्थिर न हो तो एक घंटे के लगभग ठहर जाय फिर अभ्यास दुबारा करे।

प्रथम शुद्ध सांस लेने से इस क्रिया में बहुत सहायता मिलती है। जिसमें ध्यान लगाया जाता है उसमें उन्नत इच्छा की जोर से विचार भी बढ़ता है।

मानसिक एकाग्रता और प्राणायाम की विधि में पहले पूरी गम्भीर लम्बी सांस ले परन्तु दीर्घ काल तक रोकने का यत्न न करे किन्तु सर्व क्रिया स्वाभाविक रीति से होने दे, अपनी ओर से बल न लगावे।

नाभी वा हृदय से निकले हुये गम्भीर साँस का उन सब प्रयत्नों पर विचित्र और प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

प्रथम ५ वा १० मिनट तक इष्ट मंत्र का जप ही करे तथा उसके अर्थ पर अच्छी तरह लक्ष्य देकर तन्मय हो जाय। उस समय चित्त में अन्य वृत्ति उठने न दे क्योंकि जैसे विचार होंगे वैसे ही अभ्यास से अंत:करण बन जायगा। ऐसे ही १० मिनट या उससे अधिक काल तक समाधानता होवे तब विचार बढ़ने लगेगा। यावत् निरन्तर विचार न हो तावत् सरल रीति से अभ्यास करना।

जितना समय अधिक लगेगा उतना ही ज्ञान पूर्ण होगा —लम्बी सांस लेने से रक्त की गति और बुद्धि तीव्र होती है, जिज्ञासु के मन में प्राय: देवत्व अरु अपनी शक्ति के विषय में संशय उत्पन्न होता है उससे साधक आगे बढ़ने नहीं पाता। उसे दूर कर दृढ़ता विश्वास पूर्वक यत्न करना चाहिये, आसन

का वर्णन, श्वास लेने की
तीन रीति, हठ पूर्वक प्राण
निरोध का निषेध।

प्रथम एक मिनट तक सर्व वृत्तियों को रोकने का अभ्यास करना। फिर शनैः-शनैः एक अभ्यास बढ़ाना—ऐसे करने से मस्तिष्क पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त होगा। यदि शीघ्र फल न मिले तो हताश नहीं होना। किन्तु इसमें जितना समय अधिक लगेगा उतना ही ज्ञान अधिक पूर्ण होगा और समाधानता भी अधिक काल तक रहेगी। जितना मन अधिक एकाग्र होगा उतना ही स्थिरता बढ़ेगी। यदि नियम पूर्वक अभ्यास होगा तो अशुभ विचार शक्ति के दब जाने की संभावना है। इससे नित्य ही नियमपूर्वक अभ्यास से विचार शक्ति की वृद्धि और अशुभ विचारों की क्षीणता होती है। जैसे-जैसे मन अधिक संगठित होगा वैसे-वैसे शाँति भी अधिक बढ़ेगी।

गम्भीर अरु लम्बी साँस लेने से रक्त की गति तीव्र हो जाती है। इसका असर मस्तिष्क पर भी होता है। इससे बुद्धि की तीव्रता अरु सूक्ष्मता बढ़ती है। जिज्ञासु के मन में अपनी शक्ति तथा देवत्व के विषय में प्रायः संशय उत्पन्न होता है। उसी से साधक आगे बढ़ने नहीं पाता। इससे दृढ़तापूर्वक शुद्ध मन से एकाग्रता करने में जितना आलस्य वा लापरवाही करेगा उतना ही भावी आनन्द की प्राप्ति में विलंब होगा।

आसन में कंधों को गोल कर पीछे को हटे हों। कमर भीतर को दबी हो। शिर पीछे हटा रहे। ऐसे आसन से मुँह बंद कर शनैः-शनैः गंभीर बहुत धीरे साँस ले।

श्वास लेने की तीन रीति हैं। एक नाभि से, दूसरी पसली से, तीसरी ऊपर की छाती से। इसमें प्रथम नाभि से आरम्भ

करे। परन्तु नाक से श्वास धीरे-धीरे भीतर को खींचे जिससे पेट भीतर को घुस जाय ऐसे करने से नाभी चक्र जाग उठता है। फेफड़े शुद्धवायु से भर जाते हैं। इससे नवीन रक्त उत्पन्न होता है। कुंभक में जरा भी व्याकुलता हो तब ही रेचक वा पूरक धीरे-धीरे कर लेना चाहिये। हठपूर्वक प्राण रोकने से लाभ नहीं किन्तु अधिक हानि होती है। जैसे एक बार अति भारी वस्तु उठाने से दुबारा उठाने की सामर्थ्य नहीं रहती।

सब काम धैर्य से करना परन्तु जो संकल्प हो उसे विचार कर करना और बीच ही में न छोड़ देना—संकल्प पूर्ति के लिये श्रद्धा, विश्वास और दृढ़ता भी होनी चाहिये, प्राणायाम खुली हवा या कोमल धूप में करना चाहिये।

जो कुछ करो सो धैर्य पूर्वक करना। शीघ्रता का प्रयोजन नहीं। परन्तु जो एक बार संकल्प किया वह अच्छा हो या बुरा उसे बीच में छोड़ देने से इच्छा शक्ति निर्बल हो जाती है। इससे पहले ही विचार कर संकल्प करना जिससे बीच में छोड़ने क प्रयोजन न पड़े और हानि का अवसर न हो।

संकल्प पूर्ति के लिये श्रद्धा, विश्वास और दृढ़ता भी होनी चाहिये। किसी बात को केवल सोचते रहने से ही कुछ लाभ नहीं होता किन्तु वैसा आचरण और अभ्यास भी होना चाहिये, निकृष्ट व्यवहार के काय में समय को वृथा नष्ट नहीं करना। क्योंकि अपनी शक्तियों को वृथा नष्ट करना केवल

मूर्खता का लक्षण है। प्राणायाम का अभ्यास खुली हवा में या कोमल धूप में करे। क्योंकि धूप के सूक्ष्म किरणों का भी प्रत्यक्ष लाभ होता है। इसके साथ त्राटक का भी पूर्ण अभ्यास होना चाहिये।

दर्पण में नेत्रों से टकटकी बाँध के देखने का अभ्यास करे परन्तु आध घंटे से अधिक एक बार में अभ्यास नहीं करना।

जिनको लोक व्यवहार सुधारना नहीं आता वे अपना परमार्थ कैसे सुधार सकेंगे। हमारे देश में उल्टी समझ घुसी हुई है। वे कहते हैं कि परमार्थ में व्यवहार की कोई आवश्यकता नहीं। ये उनकी भूल है क्योंकि जिन्हें जगत का व्यवहार सुधारना नहीं आता, वे परमार्थ की सूक्ष्म क्रिया तथा भेदों को कैसे समझ सकेंगे क्योंकि मन में तो भोग-विलास की इच्छा दबा रखी है और लोक-लाज व सामग्री के अभाव से त्याग-वृत्ति ग्रहण की है तो मरणान्तर मोक्ष प्राप्ति किसी प्रकार न होगी किन्तु अंतःकरण के भावानुसार फल होगा। इससे प्रथम भावना सुधारना जिसके लिये लोक-व्यवहार सुधारना चाहिये क्योंकि जब सबके साथ शुद्ध व्यवहार होगा किसी प्रकार की घोल-मेल न होगा तथा कपट-छल न होगा तब अंतःकरण की भावना शुद्ध होगी। सत्पुरुषों का कथन है कि जो सहज में होने वाली तथा जिसको शास्त्र की आज्ञा है ऐसी बातें जिससे नहीं हो सकती उससे परमार्थ की गुप्त, सूक्ष्म, अदृश्य, गम्भीर, रहस्य युक्त कार्य कैसे हो सकेंगे। इससे प्रथम व्यवहार को सुधारो पीछे परमार्थ सुधारने का यत्न करो।

भाषण सदा धीरे-धीरे गम्भीरता पूर्वक करना। आवश्यकता से अधिक भाषण दोष रूप जानना। सभ्यता की दृष्टि से भी अधिक सम्भाषण से अपमान सूचक, अहंता सूचक, क्रोध प्रदर्शक शब्द निकलते हैं इससे मिथ्या भाषी अविश्वासी

आदि कहलाना भी सम्भव है। इससे थोड़ा बोलना ही हितकर जानना।

जो हितेच्छु पुरुष हैं सो अपने दोष देखते हैं अरु अज्ञानी सदा पराये दोष देखते हैं।

यदि अपना जीवन सफल चाहो तो अपने अवगुणों को देखो और निवृत्ति का उपाय करो—जो सज्जन अपने अवगुण तथा अपनी भूलें देखते हैं वे सोचते हैं कि अब तक इतने अवगुण हम में बनें हैं अब तक हमारा मन इतना निर्बल है, ऐसे उनको पश्चाताप होता है, तब उनका मन जाग उठता है, तब सच्चे मन से अपनी भूलें मिटाने लगते हैं।

जो दूसरों के अवगुण देखते हैं, उनमें राग-द्वेष बढ़ता है और जो जो भूलें उन्हें अन्य में देख पड़ती है, सो उन्हीं में आ जाती है; क्योंकि जैसी भावना होती है वैसा ही फल मिलता है। जैसे जो जिस वस्तु का निरन्तर ध्यान करता है सो कालान्तर में तद्रूप हो जाता है। जिससे जो अन्य का दोष देखता है उसी में ध्यान रखता है तथा उस पर नमक-मिर्च लगाता है, अर्थात् थोड़ी अपने ओर से बढ़ा कर कहता है तथा दूसरे की बात विशेष रूप से जानने के लिये उसी ओर बुद्धि लगाता है, उससे दूसरे के सब दोष शनैः-शनैः उसी में आ जाते हैं। परन्तु एक दो बार परिचित वाह्य भूलों को उचित जान कर सूचित करना वा तन्निवृत्त्यर्थ उपदेश करना हानिकारक नहीं होता। जैसे वैद्य रोगियों की औषधि करता है। उसको देखता है परन्तु सांसर्गिक दोष हमें न लगे इसका बहुत ख्याल रखता है। वैसे ही दूसरों की भूलें तथा अवगुण देखकर उपाय करना हानिकर नहीं किन्तु केवल छिद्र देखकर निंदा करना और तद्रूप हो जाना हानिकारक है। तात्पर्य यह कि यदि अपने

कल्याण की इच्छा हो तो दूसरे के अवगुण न देखे किन्तु अपने ही अवगुण देखे उससे अपना स्वभाव तथा मन सुखी हो सकता है।

अपनी भलाई के लिये अपने अवगुण देखना—धर्म तथा बुद्धि बढ़ने का उपाय--अच्छी पुस्तकें देखना और उनके अनुसार आचरण करना।

अपनी भलाई के लिये अपने अवगुण जानना उचित है। वह ज्ञानी तथा आत्म परीक्षकों को जितना सहज है उतना ही साधारण जनों को कठिन है; क्योंकि आँख से सर्व वस्तु देखी जाती है; परन्तु आँख में पड़ी हुई फूली नहीं दिखाई पड़ती; वैसे ही हम दूसरों के दोष देख सकते हैं परन्तु अपने दोष नहीं देख सकते, उसका उपाय यह है कि जप और ध्यान के समय बिना इच्छा के बारंबार मन में जो-जो संकल्प उठे, उन्हें हटाने पर भी फिर वैसे ही संकल्प उठें, उन्हें अपने अवगुण जाने; क्योंकि जो कार्य सदैव होता है; उसी के संस्कार मन में भरे रहते हैं। इससे ध्यानादि के समय वही संकल्प उठते हैं; क्योंकि वे संस्कार बलवान होते हैं। उनको जान के सदा उनकी निवृत्ति का उपाय करे तो वे अवगुण निवृत्ति होंगे। जैसे चोर को जान ले और किस मार्ग से आता है यह पता लग जाय तब उसे पकड़ने में विशेष क्लेश नहीं होता; वैसे ही अपने अवगुण जान ले और उनके नाश करने की मन में इच्छा हो तो उनके नाश करने में बहुत क्लेश नहीं होता।

धर्म तथा बुद्धि के बढ़ने का उपाय

एक महात्मा हरी बाबा ज्ञानवान, परोपकारी, विचारशील थे। उनसे किसी भक्त ने पूछा, महाराज आपको इतना सामर्थ्य कैसे प्राप्त हुआ। यह सुन महात्मा ने कहा कि अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने से; शनैः-शनैः अपने मन से अवगुणों को ढूँढ के नाश करनें का उपाय किया। उसी से सब लाभ हुआ। इससे उच्च श्रेणी की धर्म पुस्तकें पढ़ने और वैसा ही आचरण करने से लाभ होगा।

※ संकल्प पूर्ति बिना श्रद्धा और विश्वास सम्भव नहीं।

संत-स्वाभाव

संत सब पर प्रेम करते हैं। रक्त और दूध का दृष्टांत—दुर्वासना त्याग का उपाय, मन स्थिरता के लिये उपवास, वृत्तियों पर शासन करने का उपाय ।

गौ के स्तन में दूध भी होता है और रक्त भी होता है। परन्तु बच्चा रक्त छोड़कर दूध ही पीता है। परन्तु किल्ल, चपटी, मच्छर रक्त ही पीते हैं। वैसे ही सज्जन अवगुण छोड़ कर गुण ही देखते हैं और दुष्ट जन कीड़ों के समान अवगुण देखते हैं। गुण देखने से गुण के स्थान में प्रेम होता है और अवगुण देखने से अवगुण के स्थान में द्वेष उत्पन्न होता है।

दुर्वासना के त्याग करने का उपाय

नित्य एकांत में बैठ कर अपनी दुष्ट वासनाओं को तथा संकल्पों को विचार करके एक चिट्ठा तैयार करे फिर शनैः शनैः उनके घटाने का विवेक, वैराग्य, दोष दृष्टि आदि उपाय करें। उनमें से जो-जो कम हो जाय उनमें निशान लगाता जाय। ऐसे करने से कुछ काल में दुर्वासना कम होने लगेगी। उनका उपाय सत् व्याख्यान श्रवण, श्रीमद्‌भगवद् गीता तथा महत्पुरुषों

के ग्रंथों का अवलोकन करना। ऐसे करने से दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुष्ट संकल्पों का धीरे-धीरे नाश हो जाता है।

मन स्थिर करने को उपवास करे। उपवास से शरीर के सब विकार नष्ट हो जाते हैं। और चित्त भी शनैः-शनैः शांत हो जाता है।

वृत्तियों पर शासन करने का उपाय

प्रथम अपने किये हुये अपराध को स्वीकार कर लेवे अर्थात् जो काम अपने से बिगड़ जाय उसको मन, वाणी से स्वीकार करे। उसका दोष दूसरे पर न लगावे कि अमुक के कारण ऐसा काम बिगड़ गया।

जैसे चोर जिस समय चोरी को बुरा समझने लगे उसी समय जान लो कि अब वह रास्ते पर आ रहा है। परन्तु दिखावे के लिये न हो। अथवा किसी प्रकार हाँ में हाँ मिलाने के लिये न हो। ऐसे कहने से कदापि लाभ न होगा किन्तु लाभ के बदले हानि ही होगी क्योंकि माया जाल इसी का नाम है।

अपराध को तत्काल मानना उन्नत मार्ग में आगे बढ़ने का उपाय है
त्याग का अर्थ धनादि त्याग नहीं किन्तु स्वार्थ और वासना का त्याग।

स्मरण रहे कि अपने अपराध को तत्काल स्वीकार कर लेना उन्नत मार्ग में आगे बढ़ने का प्रथम उपाय है। साधनों को दोष देना मूर्खता है यदि प्रत्येक कार्य विचार करके किया जायगा तो कभी भूल न होगी और किसी समय भूल हो भी

जाय तो तत्काल विचार द्वारा अपने दोष को मान लेना ही सुधार की प्रथम श्रेणी है। जो वृत्तियों के दास बन कर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के यत्न में लगे रहते हैं उनका मन सदा दुर्बल रहता है। आवश्यक सामग्री प्राप्त होने पर भी उन्हें जैसा दुःख होता है, इसका अनुभव उन्हीं को होता है। इसी से दुःख में उन्मत्त होकर नाना प्रकार के अनर्थ कर बैठते हैं। यदि ऐसे दुःखों से छूटने की इच्छा हो तो अपनी इच्छाओं का दास न बनो। प्रत्येक इच्छा उत्पन्न होते ही विचार करना कि कौन-सी वृत्ती उत्तेजित होकर इच्छा को उत्पन्न कर रही है। यदि वह इच्छा शुभ न हो तो उसे विचार और दोष दृष्टि से रोके और अपने हृदय में स्थान न दे।

चित्त वश किये बिना जो त्याग करते हैं वे शान्ति के बदले क्षोभ पाते हैं मानसिक शान्ति के नष्ट करने वाले वाह्य पदार्थ नहीं हैं किन्तु इन पदार्थों की वासना घातक है। शान्ति, सुख प्राप्ति के लिये विचार, प्रकृति और स्वभाव भेद।

त्याग किसे कहते हैं ?

त्याग-धन, स्त्री, पुत्रादि छोड़ने का नाम नहीं है। किन्तु स्वार्थ त्याग अरु वासना का त्याग करना ही त्याग है।

जो अपने धन, पुत्र, ऐश्यर्वादि को छोड़ के संन्यासी बन जाते हैं परन्तु मानसिक वासना और इच्छाओं का दमन नहीं

करते उनको सुख नहीं होता। उनकी यह वाह्य क्रिया ढोंग दिखावा मात्र है।

चित्त को वश किये बिना जो वस्तुओं का त्याग करे उसे शान्ति के बदले क्षोभ और दुःख होता है। इसी से सैकड़ों नवयुवक साधू वेष के प्रतिकूल आचरण करने लगते हैं। मान प्रतिष्ठा यश प्राप्ति के लिये छोड़ा हुआ संसार थोड़े ही काल में उनके हृदय को ऐसा खींचता है कि वे अपने चित्त के वेग को सहन करने में असमर्थ हो जाते हैं। इससे वाह्य वस्तु की ममता न छूटी तो त्याग करना ही वृथा है।

मानसिक शान्ति को नष्ट करने वाले वाह्य पदार्थ ही नहीं हैं, किन्तु इन पदार्थों की जो मन में वासना है वही शान्ति सुख को नष्ट करने वाली है।

शान्ति सुख प्राप्ति के लिये प्रथम किन-किन बातों का त्याग करना चाहिये।

घृणा, ईर्ष्या, लोलुपता, मान, माया, असत्य, छल, कपट, दंभ, अभिमान, क्रोध, निर्दयता; चिन्ता, लोभ, मोह, काम ये सभी मानसिक भाव त्यागने योग्य हैं। इनमें पहले अपने नित्य प्रति के व्यवहार में इनको त्याग करने का नाम सच्चा और मुख्य त्याग है। प्रथम इसका त्याग करना बहुत कठिन प्रतीत होता है। परन्तु धीरे-धीरे अभ्यास करते-करते वही कष्ट सुखदायी प्रतीत होता है। जब मन की सब वासनाओं पर विजय प्राप्त हो जाता है तब किसी वस्तु का त्याग करना बाकी नहीं रहता।

❀ अपने अपराध को तुरन्त स्वीकार कर लेना उन्नति मार्ग में आगे बढ़ने का प्रथम उपाय है।

प्रकृति अरु स्वभाव में भेद

प्रकृति बालक की जन्म-दत्त संपत्ति है और स्वभाव उसकी शिक्षा का फल है। प्रकृति पर उसका विशेष अधिकार नहीं, परन्तु स्वभाव उसकी बनाई हुई वस्तु है। स्वभाव आदतों का समूह है। इससे इच्छानुसार वह बदला जा सकता है। किन्तु प्रकृति का बदलना असंभव है। लोग प्राय: प्रकृति और स्वभाव के भेद को नहीं जानते। कोई आदतों को जो उनके दैनिक अभ्यास का फल हैं उसी को प्रकृति मान लेते हैं। इससे उनका बदलना कठिन हो जाता है। क्योंकि जैसा मन में निश्चय होगा वैसा ही फल होगा। एक पुरुष प्रकृति के नाजुक थे, इससे कसरत कभी नहीं करते थे। उन्होंने शरीर पुष्टयार्थ वैद्य जनों के बहुत उपाय किये परन्तु विशेष लाभ न हुआ। इससे निश्चय कर चुके थे कि हमें शरीर पुष्टी न होगी। अंत में श्रेष्ठ विचारशील जनों के वाद-विवाद से शारीरिक परिश्रम करना आरम्भ किया। तब वे वर्ष भर में ही हृष्ट पुष्ट हो गये। इससे निश्चय हुआ कि प्रकृति का क्षेत्र उतना विस्तृत नहीं है जितना हम समझते हैं। प्रत्येक उपाय करने पर भी यदि आदत न छूटे तब जानना कि ये प्राकृतिक हैं।

दृढ़ प्रतिज्ञा और लगातार
परिश्रम से सिंह भी वश
हो जाता है तो स्वभाव
बदलना कौन कठिन है।
स्वभाव की उत्पत्ति, लक्षण।

दृढ़ प्रतिज्ञा और लगातार परिश्रम करने से जंगल का सिंह भी वश में हो जाता है तो टेंव का बदलना कौन कठिन है।

गुण सुन कर उस वस्तु की सामान्य इच्छा होती है। वैसे ही अच्छे बुरे संग से भी कार्य की इच्छा सामान्य होती है। यह इच्छा जब बढ़ती है तब उस वस्तु के यथार्थ जानने की इच्छा उत्पन्न होती है। फिर उन वस्तुओं की प्राप्ति और उनका गुण जानने की इच्छा होती है। पीछे वही सामान्य इच्छा रुचि रूप हो जाती है। उससे एक प्रकार का आनन्द होता है और बार-बार उसी वस्तु में मन जाता है फिर वही रुचि बढ़ के टेव रूप हो जाती है फिर वही टेव जब बढ़ जाती है तब उस वस्तु के बिना रहा नहीं जाता। तब वह टेव स्वभाव रूप में प्रगट होती है। जब स्वभाव दृढ़ हो जाता है तब जीवात्मा पर उसका असर हो जाता है। वही असर वासना रूप से मन में, बुद्धि में भी भर जाता है। इतना बड़ा बल एक छोटी सी इच्छा में है।

अपने वृत्तियों को सदा देखे—असत् वृत्ति को तत्काल दबा दे, विचार उत्पन्न करने को अच्छी आदतों की आवश्यकता है।

हितेच्छु पुरुष को योग्य है कि सदा अपनी वृत्तियों को देखा करे। जो अयोग्य वृत्ति उठे, उसे तत्काल दबा दे। आगे बढ़ने न पावे। नहीं तो बढ़ने पर उसका नाश करना बड़ा कठिन हो जाता है। इससे पूर्व ही से सचेत रहना चाहिये। किसी कार्य को करते समय शरीर के नाड़ी जाल उत्तेजित होके मस्तिष्क के भिन्न भागों को धक्का पहुँचा कर जिन अंगों से काम लेना है उसकी ओर शक्ति पहुँचाता है बारंबार एक कार्य को दोहराने से अरु

शरीर के अंग हिलने से मस्तिष्क में शक्ति संचारी एक प्रकार के मार्ग बन जाते हैं। इससे आदत हो जाने पर किसी कार्य के करने में फिर क्लेश नहीं होता। किन्तु सुविधा होती है क्योंकि मस्तिष्क से शक्ति संचार होने में देर नहीं लगती और मन को मार्ग प्रदर्शन का कष्ट नहीं होता। अतः कार्य सुगमता से होता है। कारण यह है कि आदतों का आधार मस्तिष्क का मेदा है। अवस्था बढ़ने से मस्तिष्क का मेदा कठोर हो जाता है। इसी से लड़कपन में आदतें सहज में पड़ सकती हैं, युवावस्था में उससे कठिन और वृद्धावस्था में उससे भी कठिन। इससे बाल्यावस्था ही शिक्षा का काल है। इसीलिये बाल्यावस्था महत्व-पूर्ण मानी गई है।

विचार उत्पन्न करने को मानसिक अच्छी आदतों की आव-श्यकता है। लोग समझते हैं कि विचारों का आदतों से सम्बन्ध नहीं है। आदतों के फल केवल कार्यरूप होते हैं—यह उनका भ्रम है क्योंकि मनुष्य की आदतों पर विचारों का बड़ा भारी असर पड़ता है। निरंतर भावना करते-करते बड़े-बड़े कार्य सिद्ध होते हैं। अतएव जैसे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये खान-पान आहार-विहार सम्बन्धी योग्य आदतों की अपेक्षा है वैसे ही नैतिक आचरण अरु मानसिक उद्योग की उन्नति के लिये अनु-कूल और उत्तम शास्त्रोक्त आदतों की आवश्यकता है। स्वभाव सदा बदला करता है। उसके फेर-फार सूक्ष्म होते हैं। इससे प्रत्येक मनुष्य अपने आप नहीं जान सकता। अतः इस विषय में सावधानी से मन को देखते रहना चाहिये कि उसकी गति किस ओर हो रही है।

प्रथम मनुष्य को वस्तु दर्शन से या अन्य द्वारा वस्तु का

स्वभाव सदा बदला करता
है उसके फेर फार सूक्ष्म
होते हैं इसे अच्छी तरह
देखना चाहिये कोई कार्य
जल्दी से नहीं करना क्योंकि
जल्दी से करने में काम
ठीक नहीं होता।

बहुत लोग कहते हैं कि स्वभाव का उपाय नहीं; यदि प्राकृत कहो तो ठीक है। परन्तु जितनी बातों को मनुष्य ने अपनी शिक्षा और अभ्यास से प्राप्त किया है उनके विषय में ये कहना भूल है। क्योंकि प्रत्येक दशा में और अवस्था में मनुष्य नवीन आदतों को डाल सकता है। अपने चरित्र की उन्नति उसके हाथ में है। यदि ऐसा न हो तो बुढ़ापे में गृहस्थी को छोड़ के वानप्रस्थ ग्रहण करना असंभव न होगा।

कोई कार्य जल्दी से करना ठीक नहीं। किन्तु कार्य देर से करने में थोड़ा बिगड़ जाय तो हानि नहीं। परन्तु जल्दी से सब बिगड़ना वा नष्ट-भ्रष्ट होना बुरा है। यह बुद्धिमान का काम नहीं। घड़ी की प्रशंसा तेज चलने में नहीं किन्तु ठीक चलने में है।

स्वार्थपरता को सर्वथा त्याग दो। जब तक तुम्हारा जीवन प्रेममय न हो जाय तब तक तुम उद्योग को न छोड़ो। सबसे सदैव प्रेम करो। यही मोक्ष प्राप्ति का मूलमंत्र है। जो कार्य करो निष्काम भाव से करो। मोक्ष मार्ग के यात्री के लिये यही परम आवश्यक है।

—:०:—

शाँति मार्ग

आकांक्षा

आकांक्षा, दया, प्रेम, पवित्रतादि के निमित्त होती है और इच्छा सांसारिक पदार्थों के निमित्त होती है, जब मनुष्य आकांक्षा का आनन्द अनुभव करने लगता है तब उसका मन शुद्ध हो जाता है जैसे नित्य के अभ्यास से सांसारिक इच्छा बढ़ती है वैसे अभ्यास से आकांक्षा भी बढ़ती है।

आकांक्षा, दया, प्रेम, पवित्रतादि पदार्थों के लिये होती है। जिससे आत्मिक सुख प्राप्त होता है। इच्छा सांसारिक विषय वासना के लिये होती है। पवित्रता का अर्थ है पवित्र विचार और अपवित्रता का अर्थ है अपवित्र विचार। जब मनुष्य को यह अनुभव हो जाता है कि मुझमें जो-जो भूलें हैं वे सब मेरी ही उत्पन्न की हुई हैं, मैं ही उनका कर्ता तथा नाशक हूँ तब उसे उन पर जय करने की आकांक्षा होती है, और जैसे उसको सफलता होगी वह मार्ग भी उसे प्रगट हो जाता है।

जब मनुष्य अपने मन में आकांक्षा का आनन्द अनुभव करने लगता है तब उसका मन तत्काल शुद्ध हो जाता है; और अपवित्रता का मैल दूर हो जाता है। जब तक आकांक्षा रहती है तब तक अपवित्रता का प्रवेश नहीं हो सकता; क्योंकि एक

ही समय में पवित्रता और अपवित्रता दोनों प्रकार के विचार नहीं रह सकते; परन्तु आकांक्षा पहले बहुत थोड़ी देर तक रहती है; अतएव आकांक्षा का निरन्तर उद्योग करते रहना चाहिये।

पवित्र जीवन का प्रेमी उच्च आकांक्षाओं से मन को विशुद्ध करता रहता है। वह प्रातःकाल उठकर दृढ़ विचारों से अविश्रांत मन को शांत करता है। वह यह जानता है कि मन क्षण भर भी खाली नहीं रह सकता। यदि उच्च विचारों और आकांक्षाओं से इसकी रक्षा न की जायगी तो अवश्य यह नीच विचारों और कुत्सित इच्छाओं के आधीन हो जायगा। जैसे नित्य के अभ्यास से सांसारिक इच्छा बढ़ती है, वैसे ही आकांक्षा भी बढ़ सकती है। यदि इसके लिये प्रबल उद्योग न किया जाय तो कुत्सित इच्छाएँ अपना अधिकार जमा लेंगी। इससे प्रतिदिन कुछ काल खुली हवा में अपने मन को चारों ओर से हटा के सर्व-शक्तियों को एकत्र करना। ऐसा करने से मन ईश्वरीय ज्ञान के उपार्जन के लिये तैयार होगा।

मन को पवित्र करने के लिये अपवित्र वस्तुओं से मन को हटावे; लोभ तब तक बाधक होता है जब तक ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त नहीं होती; जो आकांक्षाओं का अभ्यास करते हुये विषयों में लिप्त होना पतनावस्था है

मन को पवित्र करने को अपवित्र वस्तुओं से मन को हटावे। इसके लिये आकांक्षा की आवश्यकता है, आकांक्षा से

मन निश्चय और वेग से ईश्वरीय ज्ञान का अनुभव करने लगता है और ज्ञान की वृद्धि होती है।

लोभ, आकांक्षा युक्त मार्ग में तब तक बाधक होता है जब तक ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। जब आकांक्षा मन में बढ़ने लगती है तब ही से लोभ क्षीण होने लगता है। आकांक्षा मन की बुराई और भलाई दोनों को प्रगट करती है जिससे मनुष्य को अपनी वास्तविक दशा का हाल मालूम होने लगता है; क्योंकि जब तक बुराई भलाई को अच्छी तरह नहीं जान लेता तब तक अपने मन पर विजय प्राप्त नहीं हो सकता— जो आकांक्षाओं का अभ्यास करते हुये भी विषयों में लिप्त हो रहा है, वह नीचे की ओर लुभाया जा रहा है। ऐसे नहीं कहना क्योंकि उसका लुभाव सूचित करता है कि वह उच्चावस्था का उद्योग कर रहा है, क्योंकि विषय लंपटता उसी में होती है जिसमें आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई—उसे केवल भोगविलासों की इच्छा है और वह उन्हीं से प्रसन्न होता है।

आकांक्षा यह सूचित करती है कि इसने कुछ उन्नति की है। मनुष्य को लुभाने वाले अपवित्र विचार अरु भोगों की इच्छा है यदि मन में काम की इच्छा नहीं है तो लालच का कुछ असर नहीं हो सकता। जब तक वाह्य वस्तु में लालच है तब तक दोष दृष्टि रूपविचार से अपवित्र वासनाओं के त्यागने का अभ्यास करना, अन्यथा पतन ही होगा। जब इसका यथार्थ विचार से अनुभव हो जाय कि बुराई मेरे ही मन में है बाहर नहीं तभी वह उन्नति कर सकेगा, उसकी लालच घटती जायगी और वह बहुत शीघ्र लोभ अरु कषाय पर विजय प्राप्त कर सकेगा।

विघ्नों का ख्याल मत करो किन्तु विघ्नों की निवृत्ति का उपाय करो सत्य के जानने के लिये प्रथम अपने अंतः-करण को देखो; जो अवगुण प्रगट हों उन्हें जान के इन्द्रिय दमन का अभ्यास करो, मूर्ख अपनी भूलों के निमित्त दूसरों को दोष देते हैं परन्तु सत्य के प्रेमी अपने को दोष देते हैं, प्रथम लोभ बहुत तीव्र होता है उसे दबाने में बड़ी कठिनता होती है परन्तु शनैः-शनैः अभ्यास से सब निवृत्त हो जाती है।

जैसे उत्साही पुरुष विघ्नों का ख्याल नहीं करता किन्तु सदा विघ्नों की निवृत्ति के उद्योग में लगा रहता है, तैसे निरंतर अकांक्षा का अभ्यासी लुभाया नहीं जाता। किन्तु वही लोभ में पड़ता है जो अपने मन को सुरक्षित नहीं रखता। प्रथम लोभ, लालच के भाव और उत्पत्ति का विचार करे तब उसकी निवृत्ति का उपाय करे। जैसे चतुर सेनापति विरोधी दल पर धावा करने से पूर्व की शत्रु की सेना का पूरा-पूरा हाल जानने का उद्योग करता है, पीछे युद्ध का निश्चय करता है, तब विजय प्राप्त होती है। मनुष्य की कषाएँ जितनी तीव्र होती हैं उतनी ही तीव्र लालसा होती है और जितना स्वार्थ तथा अभिमान होता

है उतना ही प्रबल लोभ होता है। जिसे सत्य के जानने की इच्छा है सो पहले अपने अंत:करण को देखे, उस समय जो अवगुण प्रगट हों उनसे भय न करे किन्तु उनको जान के इन्द्रिय दमन का उद्योग करे। जो अपनी भूलों को प्रगट होते नहीं देख सकता किन्तु उन्हें छिपाता है वह सत्य मार्ग का अनुगामी नहीं हो सकता।

मूर्ख अपनी भूलों के निमित्त दूसरों को दोष देते हैं, परन्तु सत्य के प्रेमी अपने आप को दोष देते हैं। अपने चाल चलन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेना और दूसरों को दोष न देना। यह उसके निवृत्ति में सहायक होती है।

प्रथम लोभ बहुत तीव्र होता है उसे दबाने में बड़ी कठिनता प्रतीत होती है। परन्तु दृढ़ता से शनै:-शनै: अभ्यास द्वारा उस पर भी विजय प्राप्त होती है। त्याग की पहली अवस्था कुछ दु:खदायी होती है परन्तु बहुत थोड़े काल रहती है, क्योंकि उस दु:ख का शीघ्र ही आत्मिक सुख में परिवर्तन हो जाता है। जितना बुद्धिमानी से उद्योग किया जाता है उतनी ही स्थिति दु:ख की कम हो जाती है।

भलाई के अनुभव से बुराई के अनुभव दूर होते जाते हैं— भलाई के अंनुभव, पाप से मुक्ति का ज्ञान, शोक पश्चात्ताप का अभाव, लोभ की निवृत्ति; उच्च अवस्था को प्राप्त व्यक्ति को उत्तम गुणों का ज्ञान प्राप्त होता है।

ज्यों-ज्यों भलाई के नवीन अनुभव होते हैं त्यों-त्यों बुराई के दु:खमय अनुभव दूर होते जाते हैं। भलाई के अनुभव कौन हैं? पाप से मुक्ति का ज्ञान, शोक अरु पश्चाताप का अनुभव, लोभ और कषाय से निवृत्ति, जिन दशाओं और अवस्थाओं में महान दु:ख होता था उनमें परमानंद होना, मन सदा शांत रहना। चिंता, भय, शंका, घृणा, द्वेष, शत्रुता से बचे रहना, आपत्ति के समय संतोष रखना, शत्रु से भी प्रेम करना, बुराई के बदले भलाई करना, बुराई की निवृत्ति और भलाई में प्रसन्न होना ये सब अनुभव हैं। शांत और बलवान दूरदर्शी जीवन जिसमें ये गुण पाये जायँ ऐसे मनुष्य की शक्ति अपरिमित और अपार होती है।

जो उच्च अवस्था को प्राप्त होता है वह जब अपनी पिछली अवस्था का विचार करता है तब उसे मालूम होता है कि जो-जो कष्ट मुझे सहने पड़े सो मेरे गुरु थे। उन्होंने मुझे उन्नत मार्ग पर लगाया। जितना-जितना मैंने उनके स्वरूप का विचार किया अरु अपने को उनसे उभारने का यत्न किया उतने ही वे मुझसे दूर होते गये। जब वे मुझे पूर्णतया शिक्षा दे चुके तब छोड़ के चले गये, क्योंकि अब मुझे उनसे शिक्षा लेने की आवश्यकता नहीं रही, ऐसा जानना।

उत्तम गुण कौन से हैं? जिनसे परमानंद प्राप्त होता है :—

(१) सबसे निष्पक्ष भाव रखना

(२) पूर्ण रूप से न्याय करना

(३) एक का पक्ष लेकर दूसरे के विरुद्ध कार्य नहीं करना

(४) जीव मात्र पर चाहे शत्रु हो पूर्ण कृपा दृष्टि रखना

(५) सर्व समय तथा आपत्ति में भी संतोष रखना

(६) अत्यंत नम्र होना

(७) स्वार्थ को बिलकुल त्याग देना

(८) सदा अपने अवगुण देखना।

(९) मन अरु शरीर को अत्यंत शुद्ध रखना, कोई बुरे विचारों का संकल्प भी न करना

(१०) तुम्हारे चारों ओर कितने ही वषाद और क्लेश जनक बाधायें हों परन्तु उस दशा में भी मन को शांत रखना।

(११) मन में सदा भलाई करने का भाव रखना, बुराई का संकल्प भी मन में नहीं करना किन्तु बुराई के बदले भलाई करना

(१२) जीव मात्र पर दया करके उनके दुःखों को दूर करना, निर्बल तथा असहायों की सहायता करना—शत्रु तक की दुःखों से रक्षा करना।

(१३) सब जीवों से अपरिमित प्रेम और सहानुभूति करना अर्थात् उनके सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होना—जो जीव सुखी हैं उनके सुख से प्रसन्न होना और जो जीव दुःखी हैं उनके दुःख से दुखी होना।

सब कामों को शांति से करना। जिस प्राकृतिक नियम से सृष्टि चल रही है उससे अप्रसन्न नहीं होना। ये गुण ऐसे हैं कि इनमें बुराई का लेश भी नहीं है। इनकी प्राप्ति करने से ईश्वर प्राप्ति होती है।

जैसे जो दबाव से वश किया जाता है वह मन से वश नहीं होता किन्तु पूर्व से अधिक शत्रु हो जाता है। परन्तु जो शांति से वश किया जाता है वह मन से वशीभूत हो जाता है। जो पूर्व शत्रु था वह मित्र हो जाता है। ऐसे ही जो बलात्कार

तथा हठ से वासनाओं को दबाते हैं उनकी वासना यथार्थ रूप से नाश नही होती । किन्तु शनैः-शनैः विचार और दोष दृष्टि से वासनाओं का जो नाश करते हैं सो थोड़े ही काल में सुखपूर्वक वासनाओं का नाश कर देते हैं। इसमें मुख्य साधन दोष दृष्टि और प्राचीन अनुभवी पुरुषों का सत्संग है ।

—: ० :—

❀ मूर्ख अपने दुःखों के लिये दूसरों को दोष देते हैं परन्तु विद्वान अपने आपको दोष देते हैं

विजयी जीवन

विश्वास एवं साहस

जीवन सफल करना हो
तो बुरी वासनाओं को
मन से पहले दूर करे;
कार्य करने से पूर्व अच्छी
तरह विचार करना, कार्य
आरम्भ करने पर घबराना
या हिचकिचाना नहीं।

जो अपने जीवन को सफल और उपयोगी बनाना चाहता है और आत्मोन्नति करना चाहता है, सो प्रथम अपने मन से बुरी वासनाओं को निकाल दे, जिनसे भलाई और पवित्रता दब रही है। नीचता अरु अपवित्रता बढ़ रही है। जो झूठ कपट अरु स्वार्थ को सफलता का साधन जानता है वह किंचित सुख अरु शांति को नहीं प्राप्त हो सकता। परन्तु जो सदा अपने स्वभाव को धिक्कारता और निंदा करता है वह भी अपने आत्म-गौरव को खो देता है। इससे सदा अपने मन पर शासन करना। उतावली और आवेशों को रोकना जिससे कभी क्रोधादिकों का आवेश न हो और किसी से घृणा न हो। जो कट्टर दुराग्रही तथा वितंडावादी हों उससे वाद-विवाद नहीं करना।

सच्चे मनुष्य इस बात को बहुत शीघ्र जान लेते हैं कि सफलता और दृढ़ बनने का तथा सांसारिक, मानसिक उन्नति के लिये इच्छा का निरोध और बहुत से आवश्यकीय कार्य भी

छोड़ने पड़ेंगे तथा दृढ़ संकल्प से शारीरिक, मानसिक सुखों को तथा मित्र-सम्बन्धियों को और भोग-विलासों को और विरोधी कार्यों को त्यागना पड़ेगा तथा समय और शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना होगा।

कार्य करने से पहले अच्छी तरह विचार करना, परन्तु जब कार्य आरंभ कर दिया तब हिचकिचाना और घबराना ठीक नहीं। काम, क्रोध, दुराग्रह, लोभ, लालच को छोड़ देना चाहिये। क्रोधी मनुष्य दुर्बल होता है।

दुराग्रही मूर्ख होता है, क्योंकि वह अपने दुराग्रह से कुछ भी सीख नहीं सकता सदैव मूर्ख बना रहता है।

लोभी और कामी मनुष्य की विशेषता; निरर्थक वाग्जाल बुद्धि के विरोधी हैं, चाहे जितना विद्वान हो परन्तु बुद्धिमान न हो तो सद्विचारनहीं कर सकता।

लोभी न तो सच्चे जीवन को समझता है और न मनुष्यत्व को ही समझता है।

कामी में केवल भोग-विलास के लिये शक्ति होती है। मनुष्यता और स्वाभिमान रखने के लिये उनमें शक्ति नहीं होती।

जैसे काम-भोग सच्चे प्रेम के विरोधी होते हैं, वैसे वाग्जाल के निरर्थक पेचीले प्रश्न भी बुद्धि के विरोधी होते हैं। न्याय शास्त्र की बारीकी और गूढ़ तत्वों की छान-बीन करने और सूक्ष्म से सूक्ष्म पर विचार करने से तुम्हें भले ही आनन्द मिलता हो

परन्तु मन को जब तक सदाचार और धर्माचरण में तत्पर न किया जायगा तब तक कदापि शांति नहीं प्राप्त होगी। जैसे गिद्ध दिन में दूर से दूर आकाश में फिर कर शाम को अपने घोंसले में लौट आता है और उसी में सुख से रात बिताता है वैसे ही तत्त्वज्ञानी को भी सद्गुणों से ही शांति अरु सुख मिलती है व्यर्थ के शब्दाडम्बर में तथा तर्क-वितर्क में सुख का लेश भी नहीं है।

मन को ऐसा साधना चाहिये कि जैसे वह सदाचार के नियमों को अच्छी तरह समझ सके और व्यवहार में उनका प्रयोग भी कर सके और अपनी प्रवृत्ति शास्त्रोक्त रीति पर चलाने के अर्थ सत्य को भलीभाँति जान सके और अपने जीवन को उच्च और उत्तम बना सके। ऐसे अभ्यास करना चाहिये और अपने मन की भूलों को निकालने के लिये ताकक से भी अधिक कठोर होना चाहिये।

मनुष्य चाहे जितना विद्वान हो परन्तु बुद्धिमान न हो तो सद्विचार नहीं कर सकता। केवल विचार से मनुष्य बुराई को नाश नहीं कर सकता और न अधिक पढ़ने से अपने पापों को और दुःखों को दूर कर सकता है किन्तु केवल अपने मन वश करने से बुराई को जय कर सकता है और धर्माचरण करने से पापों और दुःखों को नाश कर सकता है।

शाँति प्राप्त करना यद्यपि
कठिन है परन्तु उसका
उपाय सरल है—जो
अपने मन पर शासन कर
सकता है वह अवश्य
शाँति को प्राप्त होता है—

कान का संयम निरंतर के अभ्यास से प्राप्त होता है : जब तक अपने मुँह अपनी बड़ाई करना नहीं छोड़ता तब तक अपने मन को कदापि वश नहीं कर सकता—सुँह बन्द रखना, आँख-कान खोले रहना बुद्धिमानी है ।

शांति प्राप्त करना कठिन है क्योंकि प्रायः मनुष्य नीच वृत्ति जिनमें क्षणिक सुख होता है, उन्हीं में फँसे रहते हैं ।

यद्यपि शांति प्राप्त करना कठिन है परन्तु उसकी प्राप्ति का मार्ग बहुत सरल है केवल शांती के विरोधी आवेश और उनके विकारों को त्याग करना और उत्तम गुणों को अभ्यास द्वारा शनैः-शनैः संपादन करना, यही शांति प्राप्ति का सरल मार्ग है ।

जो अपने मन पर शासन कर सकता है और प्रति दिन अपने मन को शांत करने के लिये यत्न करता है वही सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है जो जितना मन का संयमी उतना ही वह स्वयं सुख का अनुभव करेगा और दूसरों के सुख का कारण होगा ।

मन का संयम निरंतर के अभ्यास से प्राप्त हो सकता है । इससे अपनी निर्बलता दूर करने को नित्य अभ्यास करना चाहिये और उत्तम गुणों को जान कर दुर्गणों को दूर करना चाहिये जब तक छोटी-छोटी वाह्य वस्तु साधक को सता रही है तब तक उसकी बुद्धि कच्ची है, ऐसे जानना और उसके हृदय को अशुद्ध और मलीन समझना चाहिये ।

जब तक अपनी बड़ाई करना नहीं छोड़ता तब तक मनुष्य अपने मन को वश नहीं सकता । इस कारण उसे सचेत हो कर अपनी बड़ाई करने का स्वभाव छोड़ कर देना चाहिये ।

मुँह को बन्द रखना अरु आँख-कान को खोले रहना बुद्धिमानी है क्योंकि ऐसा करने वाले दूसरों के सदुपदेशों को भली-भाँति ग्रहण कर सकते हैं । बुद्धिमान मूर्खों से बहुत सीख लेते हैं, मूर्ख बुद्धिमानों से कुछ भी नहीं सीख पाते ।

—: o :—

❀ मनुष्य अपने मन को वश करने से बुराई को जय कर सकता है और धर्माचरण करने से पापों और दुखों को नाश कर सकता है ।

आत्म रहस्य

आत्म रहस्य--जिनका जैसा अंतः करण होगा उसका वैसा ही व्यवहार होगा; जो मन में होगा वही क्रमशः बाहर आवेगा--मनुष्य अपने मन का स्वयं रक्षक और द्रष्टा है, चाहे ज्ञान को बढ़ा ले और चाहे अज्ञान को।

जिसका जैसा अंतःकरण होगा उसका वैसा ही जीवन होगा जो मन में होगा वही क्रमशः बाहर आवेगा मन की कोई बात प्रगट हुये बिना नहीं रहती जो गुप्त है वह भी कालांतर में बाहर प्रगट हो जाती है; केवल परिपक्व होने में देर है। जो विकार मन में उत्पन्न होते हैं वह समय पाकर शब्दों में प्रगट होते हैं अंत में उन्हीं के अनुसार कार्य होते हैं—शोक, हर्ष, दुःख, सुख, आशा, भय, राग, द्वेष, ज्ञान, अज्ञान सब मन में ही हैं; बाहर कहीं नहीं। ये सब मन की अवस्थायें हैं।

मनुष्य स्वयं अपने मन का रक्षक और मन का देखने वाला है। दोनों मार्ग उसके लिये खुले हैं ज्ञान और आनन्द के मार्ग को जानना चाहे तो अपने मन को अच्छी तरह सभांल के रक्खे, स्वच्छ अरु पवित्र बनावे, नीच कार्य और नीच विचारों को मन

में न आने दे। यदि अज्ञान और दु:ख के मार्ग पर जाना है तो भले ही असावधानी से रहे और किसी नियम के बिना जीवन व्यतीत करे। इस बात को जान लेने से परमानंद का मार्ग उसके लिये खुला है; क्योंकि फिर से यह ज्ञान हो जायगा कि मुझमें अपने मन को वश करने की शक्ति है और मैं अपने मन को इच्छानुसार बना सकता हूँ। ऐसा जानकर वह विचार और कर्म को उन्हीं मार्गों पर दृढ़ता से लगाये जो सर्वथा श्रेष्ठ हैं। वह धीरे-धीरे अपनी सारी व्यथा और चिंता को मन से निकाल देगा। तब उसका सारा दु:ख और अज्ञान दूर हो जायगा।

—: ० :—

* *शोक, हर्ष, दु:ख, सुख, आशा, भय, राग, द्वेष, ज्ञान, अज्ञान सब मन में ही हैं—सब मन की अवस्थायें हैं।*

मन का स्वभाव और उसकी शक्ति

मन ही जीवन का आधार है। मन ही से अनेक अवस्थायें उत्पन्न होती हैं। विचारों की आंतरिक क्रियाओं से जीवन और चरित्र बनता है।

मन ही जीवन का आधार है। मन से ही भिन्न-भिन्न दशा उत्पन्न होती है। मनुष्य चाहे जैसा अभ्यास से अपने मन को बना सकता है। जो कुछ ज्ञान होता है वह अनुभव से होता है। अनुभव को घटाना-बढ़ाना मनुष्य के हाथ में है। चाहे शुभ कर्म करके अपने को देवता तुल्य बना ले और चाहे अशुभ कर्म करके अपने को पशु तुल्य बना ले। लगातार किसी कार्य को करने से मनुष्य एक प्रकार की आदत बना सकता है, फिर उसी को उद्योग करके नाश भी कर सकता है। वह अपने को यहाँ तक भ्रम में डाल सकता है कि सत्य को बिल्कुल भूल जाय, परन्तु उसी में यह भी शक्ति है कि भ्रम को शनैः-शनैः दूर कर दे और फिर सत्य प्राप्त कर ले। मनुष्य की भावनाओं का अंत नहीं है। वे अनन्त हैं और उनकी स्वतंत्रता भी पूर्ण है। मन में अनेक अवस्था उत्पन्न होती है। उनमें से चाहे जिसे ग्रहण करे और चाहे जिसे त्याग दे अथवा बदल दे क्योंकि निरंतर के अभ्यास से उसे अवस्थाओं का ज्ञान हो जाता है।

विचारों की आंतरिक क्रियाओं से मनुष्य का चरित्र और जीवन बनता है। परन्तु उसमें ये शक्ति है कि वह अपने मनो-बल और उद्योग से उन क्रियाओं को बदल सकता है। आदत और पापों के बंधन स्वयं उसके बाधे हुये हैं; और केवल वही उनको तोड़ सकता है। वे बंधन मन के बिना और कहीं नहीं होते। यद्यपि उनका सम्बन्ध बाहरी वस्तुओं से देख पड़ता है परन्तु वास्तव में उनकी स्थिति वाह्य वस्तुओं में नहीं होती। वाह्य अवस्था अंतरंग अवस्था के आधीन है और उसी के अनु-कूल बनती और प्रगट होती है, परन्तु अंतरंग अवस्था वाह्य अवस्था के अनुकूल नहीं होती।

वाह्य पदार्थों की प्राप्ति के लिए मन की कुवासना और कुत्सित इच्छा उत्पन्न होती है, ऐसे ही दु:ख और शोक वाह्य पदार्थों से नहीं होते किंतु उन पदार्थों की ओर मन की अशिक्षित प्रवृत्ति होती है। जो मन स्वच्छता से शिक्षित अरु ज्ञान से सुरक्षित होता है, वह कुइच्छाओं और कुवासनाओं को त्याग देता है, उससे ज्ञान और शांति प्राप्त होती है।

मनुष्य का जीवन उसके मन से बनता है यदि कोई विचार मन में आवे तो कुछ काल में दृढ़ स्वभाव हो जाता है।

मनुष्य का जीवन उसके मन से बनता है। जैसे विचार उठते हैं और जो कार्य होते हैं, उनके अनुसार ही चित्त बनता है। मनुष्य चाहे तो नवीन विचारों से चित्त नये ढंग का बना सकता है और जीवन को परिवर्तन कर सकता है। मन की प्रत्येक दृढ़ वृत्ति का नाम आदत है। जो किसी विचार के निरंतर मन

में आने से बन जाती है। निराशा, प्रसन्नता, क्रोध लोभ, शांति, उदारता ये सब मन की अवस्थायें हैं। जब मन को बारंबार मनुष्य इनकी ओर ले जाता है तब ये ही आदत का रूप धारण करती है। यहाँ तक कि फिर अपने आप होने लगती हैं।

यदि कोई विचार मन में बार बार आवे तो एक दिन वह मन का दृढ़ स्वभाव हो जाता है। जिन विचारों को मन में रखना कठिन जान पड़ता है, ये ही विचार पुनः-पुनः मन में आने से मन की स्वाभाविक अवस्था का रूप धारण कर लेते हैं। तात्पर्य यह कि चाहे सद्गुण हों चाहे दुर्गुण हों सब अभ्यास से ही प्राप्त हो जाते हैं। अभ्यास का नाम ही स्वभाव है, आदत है। जैसे प्रथम बढ़ई के लड़के को अच्छी तरह हथियार पकड़ना नहीं आता फिर नित्य के अभ्यास से वही लड़का हथियार उठाना सीख कर कालांतर में सब काम कुशलता से करने लगता है, ऐसे ही शुभाशुभ कर्म, गुण, अवगुण निरंतर के अभ्यास से पूर्णतया अंतःकरण में स्थित हो जाते हैं; केवल पुस्तकों के पढ़ने और धार्मिक बातों के मान लेने से उत्तम जीवन नहीं प्राप्त होता किन्तु शरीर, मन, वाणी से वैसा ही अभ्यास करने से सफलता प्राप्त होती है।

उच्च बातें जानने से पूर्व छोटी-छोटी बातों को जान कर उनका अभ्यास करना चाहिये। तब ऊँची बातें और ज्ञान प्राप्ति होगी। जैसे सिद्धान्त गणित सीखने वाले को शिक्षक प्रथम ही गणित के गूढ़ तत्वों को नहीं बताते किन्तु पहले गिनती फिर जोड़ बाकी बताते हैं, पीछे अभ्यास करते-करते उत्तीर्ण होने पर सिद्धान्त के गूढ़ रहस्य बताते हैं।

—: ० :—

उत्तम जीवन के उपाय

उच्च बातें जानने के लिये प्रथम छोटी-छोटी बातों को जानकर उनका अभ्यास करना, उत्तम जीवन के उपाय—प्रथम जो कार्य साधारण बातों में विघ्न-कारी हैं उनमें आलस्य को प्रथम दूर करना।

प्रथम जो कार्य आत्मिक, सामाजिक तथा गृहस्थ की साधारण बातों में विघ्न कर्त्ता हैं, उनको दूर करना चाहिये। उनमें सबसे प्रथम आलस्य जो सर्वव्यवहारिक, पारमार्थिक कार्यों का नाशक है उसको परित्याग करना अर्थात् आवश्यकता से अधिक सोना, आवश्यक कार्यों को न करके वृथा समय को नष्ट करना इसका नाम आलस्य है। इसे दूर करने ये लिये प्रातःकाल उठने का स्वभाव डालना तथा जो कार्य आगे आवे वह चाहे छोटा हो या बड़ा उसे तत्काल कर डालना चाहिये। बिछौने पर पड़े-पड़े न खाना और जागने पर भी पलँग पर पड़े-पड़े इधर-उधर की बातें नहीं सोचना किन्तु आँख खुलते ही बैठ जाना क्योंकि पड़े-पड़े सोचते रहने से ढीलेपन का स्वभाव पड़ जाता है। मन शुद्ध नहीं रहता है। शय्या पर पड़े-पड़े विचार करने से विचार शक्ति मंद हो जाती है।

दूसरी सीढ़ी स्वार्थपरता और टूपन—इसको दूर करने के लिये भोजन नियत समय पर करना, उसके आगे पीछे कदापि कुछ न खाना, रात्रि में अधिक खाने चित्त भारी रहता है और शरीर में आलस्य भी रहता है इससे रूखा-सूखा जो आगे आवे उसी में संतोष होने लगे और पेटूपन की इच्छा बिलकुल जाती रहे तब जानो कि हमने उच्च जीवन की प्रथम सीढ़ी जय कर ली।

दूसरों को झूठा कलंक
लगाना, व्यर्थ की गप शप,
अप-शब्द बोलना, असत्य
भाषण ये जिह्वा के दोष हैं।

इसी प्रकार दूसरा पाठ सत्य भाषण का है। इसकी ५ सीढ़ी हैं। जिह्वा के दुर्गुण—१. दूसरों को झूठा कलंक लगाना २. व्यर्थ की गप शप ३. अपशब्द बोलना ४. असभ्य भाषण ५. अन्य का दोष ढूँढ़ना।

पहली सीढ़ी *सत्य भाषण* की यह है कि चुगुली करने की आदत छोड़ना। दूसर को दोष लगाना और उनके सम्बन्ध में मिथ्या भाषण करना। उनके अवगुणों को ढूँढ़ना तथा उनके पीछे बात को बढ़ा के कहना अथवा उनकी बुरी बातों को प्रगट करना। इसका नाम चुगली है।

प्रत्येक मिथ्या भाषण में निर्दयता, कपट और असत्य का अंश आ जाता है, जिसका उद्देश्य उच्च जीवन प्राप्ति का है वह मिथ्या-निंदक क्रूर शब्दों को जिह्वा पर आने से पूर्व ही रोकने का अभ्यास करे। फिर उन असद्विचारों को भी दूर करने का यत्न करे। दूसरी सीढ़ी सत्य भाषण की यह है कि वृथा गपशप

को बन्द करना दूसरों के घर की तथा स्वभाव की बातें करना गप्प है।

ऐसी व्यर्थ की ब अनियमित और अशिक्षित मन से उत्पन्न होती हैं।

अपशब्द अरु कठोर बोलना—भी अवगुण है। अपशब्द अर्थात् गाली देना या अनाप-सनाप की बातें हँसी-ठट्ठा में कहना अथवा अपने गुरुजनों को अनुचित शब्द कहना, ये सब बातें सदाचारी पुरुष को त्याग देनी चाहिये। जिसका ऐसा अपशब्द बोलने का स्वभाव हो वह पहले दूसरों को अपशब्द कहना छोड़ कर अपनी वाणी पर सदा लक्ष रख के उन-उन दोषों को छोड़ने का धीरे-धीरे अभ्यास करे।

प्राय: सभी आवश्यकता से अधिक बोलने की निंदा करते हैं। अधिक बोलना मूर्खता और कम बोलना बुद्धिमानी है।

आयु बहुत थोड़ी है उसे वृथा दूसरों के दोष ढूँढ़ने में नहीं खोना, जब साधारण कार्य सीखने में श्रम की आवश्यकता है तो सबसे सूक्ष्म आत्म-ज्ञान कैसे श्रम के बिना प्राप्त हो सकता है।

सच्चरित्र मनुष्य सदा गम्भीर और आदरयुक्त शब्द का प्रयोग करेगा और सदैव इस बात का ध्यान रक्खेगा कि जरा देर की हँसी से मैं कोई अनुचित बात न कह बैठूँ। उसे सदा उच्च और निर्दोष बात में ही आनन्द होगा। ज्यों-ज्यों वह इन

बातों पर लक्ष्य दे कर अभ्यास करेगा त्यों-त्यों उसका मन शांत और पवित्र होगा। सबसे अंतिम दोष यह है कि छोटे-छोटे दोषों को बढ़ा कर कहना। व्यर्थ में जरा सी बात में तर्क करना। स्मरण रहे कि जीवन का काल बहुत थोड़ा है। इसको वृथा दूसरों के दोष देखने में नहीं खोना। जो सदा इस बात की खोज में रहता है कि किसी का कोई दोष वा दूषित शब्द जान मिले तो उसका काट-छाँट करूँ तो जान लेना कि उसे अभी पवित्र जीवन का मार्ग नहीं मिला है।

जो अपने शब्दों को नम्र और कोमल तथा पवित्र बनाता है वह अवश्य उच्चतर मार्ग से चल कर शांति को पाता है और उसमें सत्य का भाव विद्यमान रहता है।

जब साधारण गुण विद्या आदि के सीखने में श्रम की आवश्यकता है तो सर्वोत्तम सर्व से सूक्ष्म आत्मज्ञान श्रम के बिना कैसे प्राप्त हो सकता है। शरीर और जिह्वा की इस प्रारम्भ दशा में आवश्यकता तब मालूम होगी कि जब बाहर की अनुचित दशा केवल हृदय के अनुचित दशा का फल है ये यथार्थ मालूम होगा, क्योंकि शरीर में आलस्य है तो मन भी आलसी होगा। जिह्वा का वश में न होना मन के वश न होने को प्रगट करता है। इससे मनुष्य ज्यों-ज्यों पूर्वोक्त मन, वाणी शरीर के दोषों को छोड़ने का अभ्यास करता है त्यों-त्यों उसका ज्ञान बढ़ता जाता है, उसकी सूक्ष्म दृष्टि तीव्र होती जाती है। जैसे विद्यार्थी अपने पाठ को याद कर लेता है तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। वैसे ही सदाचारी धर्मात्मा अपने अवगुणों पर जब विजय कर लेता है; तब उसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है; जो विषय वासना वालों को कदापि नहीं हो सकता।

कर्तव्य का निःस्वार्थ पालन करना, सत्य के मार्ग से किसी समय न हटना थोड़े दिखावे या तनिक स्वार्थ के लिये छल कपट नहीं करना।

उच्च जीवन का तीसरा पाठ यह है कि *१—कर्तव्य का निस्वार्थ पालन करना। २—सत्य पर दृढ़ रहना। ३—अनंत क्षमा।*

जब तक मनुष्य अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन नहीं करता तब तक उत्तम गुणों की प्राप्ति अरु सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। इससे प्रथम स्वार्थयुक्त विचारों को निकाल देना, तब कर्त्तव्य कर्म दु:ख का कारण नहीं होगा। किन्तु सुख का कारण हो जायगा—कर्त्तव्य नाम अपने वर्णाश्रम धर्म को यथा विधि संपादन करना।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मेनिधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

तीसरे पाठ की दूसरी सीढ़ी सत्य मार्ग पर दृढ़ रहना। यह गुण हृदय में पुष्टता से जम जाना चाहिये, जिसने प्रतिदिन के कार्य में इसका प्रवेश हो। अर्थात् सब काम सत्यतापूर्वक हों। बेईमानी, चालाकी, धोखेबाजी, पापाचार ये सर्वदा सर्वकाल में परित्याग करना।

सत्य के मार्ग से किसी समय जरा भी हटना न चाहिये—भाषण में अपनी ओर से कुछ भी घटाना-बढ़ाना नहीं, किन्तु साफ-साफ जैसा का तैसा प्रिय शब्दों से बोलना चाहिये।

थोड़े दिखावे के लिये अथवा तनिक स्वार्थ के लिये छल-कपट नहीं करना, चाहे देखने में वह कितना ही तुच्छ क्यों न हो यह एक ऐसी भ्रम कारक अवस्था है कि जिसके छोड़ने का

अवश्यमेव यत्न करना चाहिये। जब सत्य के गुणों का पूरा-पूरा अभ्यास हो जायगा अरु सत्य उसके रोम-रोम में प्रविष्ट हो जाय तब असत्य और दिखावा तथा लालच सर्वथा जाती रहेगी। हृदय स्वच्छ होगा तभी आचरण शुद्ध होगा और ज्ञान बढ़ेगा।

तीसरी सीढ़ी *अनंत क्षमा* की है। अभिमान आदि अवगुणों से जो दूसरों को दुःख देने का भाव मन में आता है, उसको दूर करके जीवमात्र से उदारता और दयालुता का व्यवहार करना इसका नाम क्षमा है—दूसरे से द्वेष ईर्ष्या करना, बदला लेना सर्वथा तुच्छ और हानिकर है। उनकी ओर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये। ये अवगुण सवथा दूर हो जाय और इनका मन पर तनिक भी प्रभाव न पड़े।

अत्यंत दृढ़ सचरित्र के मन में अपनी हानि का भी बदला लेने का भाव निकल जाता है, मानसिक बुरी दशा तथा उनके परि-णाम।

अत्यन्त दृढ़ सच्चरित्र और सदाचारी के मन में अपनी हानि का विचार भी नहीं आता। उसके मन से बदले का भाव निकल जाता है। उसका कोई शत्रु नहीं रहता, इस पर भी यदि उससे कोई शत्रुता करे परन्तु वह उससे भी मित्रता का ही व्यवहार करता है और मन में यह सोचता है कि इसमें उसका बहुत कुछ दोष नहीं वह अज्ञानता से ऐसा करता है। जब मन की ऐसी अवस्था हो जाती है, तब आत्म ज्ञान की तीसरी सीढ़ी पूर्णतया जीती जाती है।

मानसिक दशायें अरु उनके परिणाम

सर्व प्रकार का दुःख मन की बुरी भावनाओं से उत्पन्न होता है। जहाँ शुद्ध भावना होती है वहाँ सुख ही होता है। मानसिक शांति का नाम ही सुख है। और मन की अशांति का नाम दुःख है। जब तक मनुष्य मन की खोटी वासनाओं में रहता है तब तक उसका जीवन शुद्ध नहीं होता। जब मन शुद्ध हो जाता है तभी शांति और स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

मन की बुरी दशायें	*उनके परिणाम*
१. द्वेष	—हानि, उत्पात, विपत्ति, दुःख
२. काम	—बुद्धि की भ्रष्टता-पश्चात्ताप, लज्जा का विनाश
३. लोभ	—भय, अशांति, दुःख, हानि
४. अभिमान	—निराशा, क्लेश, आत्म ज्ञान का अभाव
५. अहंकार	—कष्ट, दुःख
६. दूसरों को बुरा बनाना	—कष्ट उठाना, दूसरों से घृणित होना
७. दूसरों का बुरा चाहना	—असफलता, कष्ट
८. स्वाथपरता	—क्लेश, विचार शून्यता, असभ्यता असावधानी, रोग
९. क्रोध	—शक्ति और प्रभाव का नाश
१०. इच्छा	—शोक, मूर्खता, दुःख, अनिश्चितता और अकेलापन

मन को ये कही हुई दशायें छोड़ने योग्य हैं। बुराई कोई वस्तु नहीं है किन्तु भलाई न करने का नाम बुराई है। अथवा भलाई को ठीक काम में न लाने का नाम बुराई है। जब मनुष्य प्रेम को

ठीक-ठीक जान लेता है तब घृणा अवश्य दूर हो जाती हैं ऐसे ही प्रत्येक अनुचित दशा को जानना चाहिये।

मन की अच्छी दशायें और
उनके परिणाम

मन की अच्छी दशायें	उनके परिणाम
१. अनुराग	—नम्र भाव, आनन्द, सुख
२. शील	—बुद्धि की स्वच्छता, हर्ष, दृढ़ विश्वास
३. निस्वार्थता	—साहस, सन्तोष, सुख, बाहुल्यता
४. नम्रता	—शांति, सुख, चैन
५. निरहंकारता	—सत्य का ज्ञान, समता, सर्व अवस्थाओं में संतोष
६. दयालुता	—रक्षा, दूसरों से प्रेम आदर की प्राप्ति
७. दूसरे का शुभ चिंतन	—आनन्द, सफलता
८. आत्म संयम	—मन की शांति, विचार, सूक्ष्मता, स्वच्छता, स्वास्थ्य, आदर
९. धैर्य	—मानसिक शक्ति वृद्धि, विस्तार
१०. आत्म विजय	—ज्ञान, प्रकाश, सूक्ष्म दृष्टि शांति

ये दशायें प्रकाश और आनन्द की हैं।

जो खोटी वासनाओं में फँसा है, अज्ञानी है उसे बुराई की कुछ पहिचान नहीं है, न उसे अपना ज्ञान है और न उन कारणों को जानता है जिनसे उसका जीवन बना है।

जो उच्च जीवन को पूर्ण रीति से प्राप्त करना चाहता है और जीवन के उद्देश्यों को जानना चाहता है वह अपने मन की सब बुरी वासनाओं को त्याग दे और भलाई के अभ्यास में निरंतर लगा रहे यदि वह दुखी रहता है या किसी बात में उसे संदेह होता है तो वह अपने मन में देखे कि कौन-कौन बुरे संकल्प और बुरे स्वभाव हैं। उनको जान कर उन्हें छोड़ने का अभ्यास करे और अपने को स्वच्छ रक्खे तो प्रतिदिन उसमें से बुराई कम होती जायगी और भलाई बढ़ती जायगी। ऐसे वह नित्य बलवान्, बुद्धिमान् और सभ्य बनता जायगा। जिसे सद्गुणों और ज्ञान प्राप्ति की इच्छा है वह अपना सुधार करे, भ्रम को दूर करे, वास्तविक रूप को जाने, सच्चरित्रता का अभ्यास करे।

प्रथम प्रातः उठ के ध्यान करे, मन को बुराई से हटावे शाँति के समय मनः विश्लेषण करे; स्वार्थी को नियम से चलना बहुत बुरा लगता है।

प्रथम प्रातःकाल उठ कर ध्यान करे, शरीर को अपने वश करके मन को बुराई से बचा कर नित्य का कार्य आरम्भ करे। अच्छी तरह युद्ध किये बिना जय प्राप्ति नहीं होती, वैसे ही अभ्यास के बिना लालच को दूर करना असम्भव है।

शांति के समय मन को देखो कि कैसे विचार अधिक उठते हैं। यदि बुरे विचार अधिक उठें, बारम्बार मन वैसे ही संकल्प करे, उन विचारों का धीरे-धीरे अभ्यास से नाश करे। सत्य की

प्राप्ति नियमपूर्वक कार्य करने से होती है। उद्योग और अभ्यास से धैर्य बढ़ता है और धैर्य ही से नियम का पालन होता है।

जो स्वार्थी है उसे नियम से चलना बहुत बुरा लगता है। इससे नियम करने से बचता फिरता है, परन्तु सत्य की इच्छा धैर्य संतोष से उद्योग करके बुराई को नाश करता है। जैसे माली अपने फूलों को दिन-दिन बढ़ता देख कर प्रसन्न होता है, वैसे ही उसको भी ज्ञान, दया, प्रेम, पवित्रता रूप फूलों को देख कर आनन्द होता है। हे सत्य के प्रमियों! अपने मन को पूरी तौर से वश करो। सावधान, दृढ़चित्त और विचारशील बनो तुम्हारी मुक्ति तुम्हारे समीप है। केवल उद्योग की आवश्यकता है। यदि उद्योग करके ठीक-ठीक कार्य करोगे तो अवश्यमेव बंधनों से छूट जाओगे।

उद्योग करने पर १०० बार भी असफलता हो तो भी निराश नहीं होना प्रातःकालीन उत्तम विचारों फल खूब समझ कर काम करना, मन को पवित्र रखने से स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा।

उद्योग करने पर १० बार अथवा १०० बार भी असफलता हो तो निराश न होना, किन्तु अपने मार्ग पर दृढ़ हो कर लगे रहना। अवश्य सफलता होगी। पहले लड़ना है, पीछे जीत होगी। वैसे ही पहले परिश्रम करना है पीछे आराम मिलेगा।

आरम्भ में नीच जीवन की गड़बड़ रहती है, परन्तु अन्त में सुन्दर जीवन से शांति और आनन्द मिलता है।

प्रातःकाल उत्तम विचारों को मन में लाने से उत्तम कार्य होते हैं और उत्तम कार्य करने से जीवन उत्तम होता है और उत्तम जीवन से आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रत्येक दशा में अपने मन की सर्वोच्च भावनाओं पर शुद्ध अंतःकरण से पूर्ण श्रद्धा करना और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्भयता और शांति से उद्योग करना और इस बात का निश्चय रखना कि भविष्य में हमारे प्रत्येक विचार अरु प्रत्येक कार्य का हमें बदला मिलेगा। ईश्वर के नियमों में भूल नहीं हो सकती। जो कुछ हमारा है उसका एक-एक कण हमें मिलेगा इसी का नाम सच्चा विश्वास है।

अपने काम को अच्छी तरह समझ कर करो। जितना विचार पूर्वक काम करोगे उतनी ही सफलता प्राप्त होगी और उन्नति करते-करते अपने इच्छित-स्थान पर पहुँच जावोगे और उदार विचारों द्वारा वास्तविक सौंदर्य और उद्देश्य-पूर्ति तुमको प्राप्त हो जायेगी।

अपने मन को पवित्र रखने से तुम्हारा स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा और दृढ़ विश्वास रखने से अपने मन को वश करने का बल भी आ जावेगा।

प्रेम, शील, संतोषादि
वृत्तियों से स्वास्थ्य
और सफलता लाभ
जिह्वा को पूर्ण रीत्या वश
कर सर्वदा प्रिय भाषण

से सर्व कार्य, सफलता प्राप्ति, दूसरों से व्यवहार की रीति पर विचार, अन्य के दोष से पाप, शोक, संताप, क्रोध की वृद्धि ।

जो सदैव प्रेम शील संतोषादि गुणों को धारण करे और सत्य तथा न्याय से अन्यथा काम न करे वह शक्ति, स्वास्थ्य और सफलता लाभ करेगा और परंपरा से नित्य अविनाशी लोक में प्रवेश करेगा ।

जो अपनी जिह्वा को पूर्ण रूप से वश कर ले और सर्वथा प्रिय, मधुर और पवित्र वाक्य मुख से निकाले तब सत्य भाषण की पाँचों सीढ़ी पूरी होंगी और सत्य का दूसरा पाठ पूर्ण होगा ।

मैं दूसरों से कैसा व्यवहार करता हूँ और मैं दूसरों के लिये क्या करता हूँ, मेरे काम निस्वार्थ और प्रेमपूर्वक होते हैं कि नहीं, इन प्रश्नों को शांति से अपने मन में विचार से देखो तो निस्संदेह अपनी भूलों का पता तुमको लग जायगा । उनको जान कर शनैः-शैनः उनके त्याग करने का अभ्यास करो ।

जीव मात्र से सदा प्रेम करना, इसी का नाम सच्चा जीवन है । ऐसे जान कर सब से प्रेम करना, किसी से द्वेष नहीं करना तथा निंदा नहीं करना । ऐसे निःस्वार्थ प्रेम से सर्व पाप से छूट जाता है, तब परमानन्द प्राप्त होता है । जिनका मन निस्वार्थ प्रेम से शुद्ध हो गया है उन्हीं को आनंद प्राप्त होता है । स्वार्थी मनुष्य को आनंद नहीं प्राप्त होता ।

ज्यों-ज्यों मनुष्य अन्य के दोषों को देखता है त्यों-त्यों पाप, शोक, संताप, क्रोधादि इनकी वृद्धि होती जाती है। और ज्यों-ज्यों अन्य के दोषों को देखना छोड़ता जाता है, त्यों-त्यों पाप, शोक, संताप, क्रोधादिकों से छूटता जाता है। इससे धीरे-धीरे अभ्यास से अन्य के दोषों को देखना छोड़ कर सदा अपने दोषों को देखा करे तो शीघ्र ही कल्याण होगा।

❀ *बुराई कोई वस्तु नहीं है, किन्तु भलाई न करने का नाम ही बुराई है।*

मुक्ति का मार्ग

ध्यान लक्षण

किसी वस्तु पर एकाग्र चित्त
से मन लगाना ध्यान है,
निरंतर ध्यान का फल,
निष्पक्ष और शुद्ध भाव
से आत्म चिन्तन करना
ध्यान है—

किसी वस्तु पर कुछ काल तक एकाग्र चित्त से मन को लगाना इनका नाम ध्यान है।

जिस विषय पर मनुष्य निरंतर विचार करता है उसे केवल वह समझ ही नहीं लेता किन्तु उसी के अनुरूप हो जाता है। उस विचार का असर उसकी नस-नस में प्रवेश कर जाता है। इससे यदि तुम सदैव स्वार्थ परता और नीचता की बातों पर विचार करते रहोगे तो एक दिन तुम निश्चय नीच और स्वार्थी बन जावोगे। परंतु यदि सदैव पवित्रता अरु निस्वार्थता के विचार करोगे तो कुछ काल में अवश्यमेव पवित्र और निस्वार्थ बन जाओगे।

जो निरंतर किसी गुण विशेष का ध्यान करता है तो अवश्य वह गुण उसमें आ जाता है। इससे तुम जिस विषय का ध्यान

करो वह उच्च और उत्तम हो जिससे तुम भी उच्च और उत्तम हो जावो। इसी से तुम्हारा मन शुद्ध होगा।

यदि कोई व्यवहारिक या पारमार्थिक वस्तु की इच्छा करे तो श्रम और उत्साह से कार्य करने से अवश्य उस वस्तु का लाभ होगा। परन्तु हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे और केवल इच्छा मात्र करे कि अमुक वस्तु प्राप्त हो तो कदापि प्राप्ति नहीं होगी। अध्यात्मिक लाभ की इच्छा हो तो धैर्य और दृढ़ता से उद्योग करो तो अवश्यमेव अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी।

निष्पक्ष और शुद्ध मन से आत्मा और परमात्मा का ऐक्य भाव से चिंतन करना इसका नाम ध्यान है। ध्यान करने के लिये विशेषत: प्रात:काल का समय उत्तम है जब प्रत्येक वस्तु शांत अवस्था में रहती है। उस समय समस्त प्राकृतिक अवस्था तुम्हारे पक्ष में होगी। कषाय और वासना भी रात्रि के शयन से जगने पर स्वस्थ चित्त होने से मंद होंगी और मन भी शांत होगा, इससे आध्यात्मिक ज्ञान के विचार में स्वाभाविक प्रवृति होगी। परंतु उस समय आलस्य और इन्द्रिय लोलुपता का त्याग अवश्यमेव करना होगा। यदि तुम ऐसा उद्योग न करोगे तो कदापि उन्नति को न प्राप्त हो सकोगे।

आत्मिक उन्नति के साथ मानसिक और शारीरिक उन्नति भी होती है; सूर्योदय से पूर्व उठने का फल, सत्य ज्ञान की प्राति, आत्म चिन्तन और इन्द्रिय दमन ही ज्ञान वृद्धि का मुख्य उपाय है।

आत्मिक उन्नति के साथ मानसिक और शारीरिक उन्नति भी होगी। जो लोग आलसी और विषय-वासना में तत्पर हैं, उन्हें कदापि ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। जो हृष्ट-पुष्ट बलवान होने पर प्रातः काल बहुमूल्य समय को आलस्य और निद्रा में नष्ट करते हैं वे कदापि उन्नति नहीं कर सकते।

जो नक्षत्र अस्त होने से पहले, जिस समय संपूर्ण संसारी जन सोये होते हैं उस समय उठ के अपनी वासनाओं को और कषायों को मंद करता है और उच्च, पवित्र, सत्य, ज्ञान प्राप्त करने और ईश्वर दर्शन करने का उद्योग करता है वह अवश्यमेव चित्त की शांति को प्राप्त करता है।

इस संसार में ऐसा कोई भी ऋषि मुनि और महात्मा नहीं हुआ जो ईश्वराधन के लिये प्रातःकाल न उठता हो।

आत्म चिंतन और इन्द्रिय दमन इनका कार्य कारण सम्बंध है। इसलिये आत्मचिंतन रूप ध्यान और इन्द्रिय दमन और विचार से अपने अवगुणों को ढूँढ़-ढूँढ़ के नाश करो यही आत्म ज्ञान वृद्धि का मुख्य उपाय है। इससे जितना तुम अपनी नीच वासनाओं को दबा के उच्च आकांक्षा करोगे उतना ही धीरे-धीरे ईश्वरीय प्रेम का प्रभाव तुम्हारे मन पर पड़ता जायगा। तब तुम अपने विचारों से दिन दिन अधिक सभ्य और सुशील, प्रेमी, धर्मात्मा बनते जावेगे। ध्यान की महानशक्ति तुम्हारी सर्व प्रकार की मूर्खता, स्वार्थपरता और अज्ञानता का नाशकर देगी और ज्यों ज्यों अंतः करण के पाप और वासनाओं की निवृत्ति होगी त्यों त्यों सत्य अरु ज्ञान का स्पष्ट अरु निर्मल प्रकाश अंतःकरण को पवित्र और उज्ज्वल बनाता जायगा।

एकांत में ध्यान के समय जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अंतः-करण को दुःख, शोक और चिंता के समय प्रफुल्लित करता है।

ध्यान के समय जितना ज्ञान बढ़ता जायगा उतनी ही स्वार्थ युक्त वासना, दु:ख, शोकादि दूर होते जायेंगे।

ध्यान करने से ईश्वरीय सिद्धांतों का ज्ञान हो जाता है और दृढ़ विश्वास और साथ ही परम शांति भी प्राप्त होती जाती है।

जो एकाग्र चित्त होकर ध्यान करता है वह पहले दिन तो ब्रह्म को अपने से बहुत दूर देखता है परन्तु नित्य के अभ्यास से दिनों दिन निकट अनुभव करने लगता है। ब्रह्म वाक्यों पर चलने वाले को विचारों के शुद्ध और पवित्र होने से सत्य मार्ग दिखाई देने लगता है।

ध्यान के ५ अंग हैं प्रेम,
दया, हर्ष, पवित्रता अरु
शाँति।

ध्यान के ५ अंग हैं (१) *सार्वजनिक प्रेम* (२) *दया* (३) *हर्ष* अर्थात् अन्य का ऐश्वर्य देख के प्रसन्न होना तथा दूसरे के सुख से अपने को सुखी मानना (४) *पवित्रता* अर्थात् रोग तथा शोक पाप के फल हैं ऐसा जान के इन्द्रिय जन्य सुखों को तुच्छ जान कर उनके भयंकर परिणामों को विचार कर शरीर को पवित्र रखना (५) *शांति* यह अवस्था प्राप्त होने से मन के राग द्वेष, हानि लाभ, अन्याय, अत्याचार के विचार अंत:करण से निवृत्त होने लगते हैं।

ध्यान के समय इन पाँचों बातों का लक्ष्य रख कर मन से द्वेष को छोड़ कर सबका भला चिंतन करना और दृढ़विश्वास करना कि पूर्ण पवित्रता और शुभ चिंतन से अवश्यमेव परमात्मा की प्राप्ति होगी क्योंकि जिसका जिस कार्य पर दृढ़ विश्वास होता है वह कार्य उसका अवश्य सिद्ध होता है।

जो स्वार्थ और माया में डूबा रहता है वह अपने ही विचारों को सच्चा और दूसरे के विचारों को झूठा मानता है, यदि ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा है तो स्वार्थ अरु माया को त्यागो, अपने चंचल अरु अस्थिर भावों को वश में करो।

जो स्वार्थ और माया में डूबा रहता है वह केवल अपने ही विचारों को सच्चा और दूसरे के विचारों को झूठा समझता है। परन्तु ब्रह्म ज्ञान का इच्छुक जिसने सत्य और मिथ्या का भेद जान लिया है वह सबसे प्रेम और उदारता करता है और उनके विचारों के सामने अपने विचारों का पक्ष नहीं करता किन्तु सारासार विचार करके ईश्वरीय प्रेम वृद्धि के अर्थ सार का ग्रहण करता है।

यदि ब्रह्म प्राप्ति की इच्छा है तो प्रथम स्वार्थ और माया को त्यागो तथा सर्व मतों को और सर्वधर्मों को उत्तम समझो क्योंकि सत्य सब में विद्यमान है। इसी समता से शांति की वृद्धि और प्रेम की वृद्धि होगी तभी यथार्थ ब्रह्म ज्ञान होगा।

स्वार्थ और माया का त्याग करने से यह तात्पर्य नहीं कि केवल वाह्य वस्तु अर्थात् उत्तम वस्त्र तथा स्वादिष्ट भोजन का त्याग करना किन्तु अपने मन से विषयों की इच्छा और राग-द्वेष, स्वार्थ, मान इत्यादि प्राचीन सांसारिक वासनाओं का त्याग करना, स्वार्थ और माया का त्याग है। उनके स्थान में प्रेम सभ्यता, परोपकार, नम्रतादि शुभ गुणों का ग्रहण करना।

विषय वासना से बढ़ के दुःख नहीं है और इन्द्रियों से बढ़ कर कोई धोखे की वस्तु नहीं है। इन दोनों में से एक को भी जो नाश कर देता है वही ब्रह्म मार्ग में तत्पर हो सकता है।

अपने चंचल विचारों और अस्थिर भावों के वश में हो कर उनके अनुसार कार्य करना निर्बल और साहसहीन होना है और उन्हीं को अपने वश में करना और अपने मन को सत्मार्ग पर लगाना प्रबल और साहसी होना है। जो अपने कषायों और स्वार्थयुक्त इच्छाओं को रोक कर आत्म-चिंतन करता है वही प्रबल शक्तिशाली होने लगता है।

जब बहुत ढूँढ़ने-खोजने और कष्ट और दुःख उठाने पर ईश्वरीय सिद्धांत का प्रकाश अंतःकरण पर पड़ने लगता है अर्थात् आत्मा परमात्मा का अनुभव होने लगता है तब उसको शांति और परम सुख की प्राप्ति होती है।

जिसे ब्रह्म ज्ञान हो जाता है वह इधर-उधर मारा-मारा फिरा नहीं करता, ईश्वरीय प्रेम जानने को एकाग्र चित्त से श्रम पूर्वक विचार करो।

जिसको ब्रह्म ज्ञान हो जाता है और आत्मानुभव करने लगता है वह इधर-उधर मारा-मारा नहीं फिरता किन्तु गम्भीर, शांत रहता है। वह अपनी कषायों और इच्छाओं का दास नहीं बनता किन्तु उनका नाशक बन जाता है।

जो किसी एक निश्चित उद्देश्य पर जमा रहता है वह प्रत्येक अवस्था में शांत, गम्भीर और निर्भय रहता है। विपत्ति और

मृत्यु से भी भय नहीं करता किन्तु स्वार्थ को त्याग कर सत्य परायण हो के दृढ़ जमा रहता है।

ईश्वरीय प्रेम समझने के लिये एकाग्रचित्त से श्रमपूर्वक विचार करो। अपनी सर्व आदतों और इच्छाओं को शनैः-शनैः दूर करो जितना इस बात पर दृढ़ रहोगे उतना ही अधिक स्पष्ट रूप से ईश्वरीय प्रेम तुममें विकसित होगा और तुम्हारे अवगुण और तुम्हारी भूलें स्पष्ट रूप से प्रगट होने लगेंगी और तुम्हें नवीन उद्योग करने के अर्थ उत्साहित और उत्तेजित करती रहेंगी। एक बार भी इस नित्य अविनाशी सिद्धांत के अलौकिक महत्व की झलक पा जाओगे तो फिर कभी स्वार्थपरता, निर्बलता और अपूर्णता की ओर प्रवृत्ति न करोगे किन्तु सर्व विरोधी भावों को त्याग के प्रेम में तन्मय हो जाओगे तथा एक रूप हो जाओगे। इसी अंतरंग समता तथा एकता का नाम आत्मिक बल है। ऐसे ही दया, पवित्रता आदि का उपयोग करो। सत्य या ब्रह्म की ऐसी शक्ति प्रबल है कि उसके प्राप्त होने से विरोधी भाव सब आपही मिटने लगेंगे।

जितना तुम इन सिद्धांतों को समझोगे अरु इन पर विश्वास करोगे उतना ही तुम्हें आध्यात्मिक बल प्राप्त होगा और वह बल शांति, धैर्य, संतोष, सहनशीलता अरु समता रूप में प्रगट होगा।

शांति अरु धैर्य से इच्छाओं
का निरोध और इन्द्रिय
दमन होता है जितना तुम
धैर्य, संतोष, इन्द्रिय-निग्रह
अरु इच्छाओं का निरोध
करोगे उतना ही तुम्हारा
बल अरु साहस बढ़ेगा।

शांति और धैर्य से इच्छाओं का निरोध और इन्द्रियों का दमन होता है। संतोष और सहनशीलता ज्ञान प्राप्ति के चिह्न हैं।

ब्रह्मवादियों का कथन है कि इच्छाओं का निरोध करने से उस शक्ति का प्रादुर्भाव होता है कि जिससे आश्चर्यकारक कार्य किये जा सकते हैं।

वास्तव में जिसने अपने अंतःकरण को वश कर लिया है उस पर चाहे जैसी भारी आपत्ति आये तो भी वह अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। जितना तुम धैर्य, संतोष, इन्द्रिय-निग्रह तथा इच्छाओं का निरोध करोगे उतना ही तुम्हारा बल अरु साहस बढ़ेगा और उसी से उन्नति को प्राप्त होगे—इस मार्ग में अनेक बार परास्त होना पड़ेगा परन्तु अपनी श्रद्धा पर दृढ़ जमे रहो, उससे विचलित न हो तब तुम में इतना बल आ जायगा कि फिर स्वार्थ और वासना की लहरें तुम्हें न सता सकेंगी।

यदि तुम एक बार भी इस बात को समझ लोगे कि तुम्हारी असफलता और दुःख तथा कष्ट तुम्हारे अवगुण और भूलों के सूचक हैं तो तुम बराबर अपनी भूलों को देखते रहोगे और गिर-पड़ कर ठोकरें खा कर यह जान लोगे कि कहाँ से कार्य को आरम्भ करना है, कौन सी बात पहले अपने मन से दूर करनी है जिससे तुम्हारे हृदय में ईश्वरीय प्रेम जागृत हो। ज्यों-ज्यों तुम प्रतिदिन उन्नति करोगे। माया और स्वार्थपरता को अपने मन से दूर करोगे त्यों-त्यों ईश्वरीय प्रेम तुममें धीरे-धीरे प्रकट होने लगेगा और जब तुम्हारे क्रोधादि मंद होने लगेंगे तथा विषयवासना के वशीभूत न होंगे तब शांति, सहनशीलता तुममें आने लगेंगी—तब तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि ईश्वरीय प्रेम का प्रादुर्भाव होने लगा है।

ईश्वरीय प्रेम पक्षपात रहित होता है अरु मानुषी प्रेम वस्तु विशेष पर होता है-जो अपने मानुषीय प्रेम को पवित्र बना लेता है उसके सब स्वार्थ युक्त विचार नष्ट हो जाते हैं जहाँ मानुषीय प्रेम होता है वहाँ द्वेष भी होता है ।

ईश्वरीय प्रेम और मानुषीय प्रेम में बड़ा अंतर है । ईश्वरीय प्रेम सर्वथा पक्षपात रहित होता है और मानुषीय प्रेम वस्तु विशेष से होता है अरु स्वार्थ युक्त होता है जब इच्छित वस्तु का वियोग हो जाता है तब उस वस्तु के प्रेमी को भारी दु:ख होता है ।

ईश्वरीय प्रेम सारे ब्रह्मांड से होता है किसी वस्तु विशेष से नहीं होता परन्तु कोई वस्तु उससे बाहर नहीं होती ।

जो अपने मानुषीय प्रेम को धीरे-धीरे इतना पवित्र और विस्तृत बना लेता है कि उसके सर्वप्रकार के अपवित्र और स्वार्थयुक्त विचार नष्ट हो जाते हैं फिर उसे कोई दु:ख वा कष्ट नहीं होता—मानुषीय प्रेम संकुचित और परिमित तथा स्वार्थयुक्त होता है। इसी से कष्टकारक होता है परन्तु ईश्वरीय प्रेम विशुद्ध पवित्र, स्वर्थरहित होता है । उससे किसी प्रकार का दु:ख नहीं होता। तो भी ईश्वरीय प्रेम प्राप्ति के लिये मानुषीय प्रेम की अत्यन्त आवश्यकता है अर्थात् मानुषीय प्रेम हुये बिना ईश्वरीय प्रेम नहीं उत्पन्न हो सकता ।

मानुषीय प्रेम विनाशी तथा अनित्य है और ईश्वरीय प्रेम अविनाशी तथा नित्य है। जहाँ मानुषीय प्रेम है तहाँ मानुषीय

द्वेष भी है परन्तु ईश्वरीय प्रेम स्वार्थपरता के विचारों से रहित है इससे उसमें द्वेष नहीं होता।

ईश्वरीय प्रेम जब तक स्वार्थ का नाश नहीं होता तब तक नहीं होता इससे ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के लिये स्वार्थ को निर्मूल कर देना चाहिये।

जहाँ निन्दा, घृणा, द्वेष है
वहाँ ईश्वरीय प्रेम नहीं
रहता-जो ईश्वरी प्रेम की
प्राप्ति का उद्योग करता
है वह निन्दा और घृणा
के विचारों को रोकता है।

जहाँ निंदा, घृणा और द्वेष है तहाँ ईश्वरीय प्रेम नहीं रहता, ईश्वरीय प्रेम उसी के हृदय में वास करता है जहाँ सर्व प्रकार से पर निंदा का अभाव है।

तुम दूसरों से प्रेम करते हो, प्रशंसा करते हो परन्तु यदि वे तुमसे घृणा करने लगें तुम्हारी रुचि के प्रतिकूल काम करने लगें तब तुम भी उनसे घृणा करने लगोगे और उनकी निंदा करने लगोगे तो ज्ञात होगा कि तुममें अभी ईश्वरीय प्रेम नहीं है। जिसमें ईश्वरीय प्रेम होगा वह स्वप्न में भी किसी का बुरा चिंतन नहीं करेगा। जो दूसरों की निंदा करता है अथवा अपने मन में किसी का बुरा सोचता है वह ईश्वरीय प्रेम से अनभिज्ञ है।

जो ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति के अर्थ उद्योग करता है वह सदा पर की निंदा तथा घृणा के विचारों से अपने को रोकता है। जहां-कहीं निर्दोष पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान है वहाँ घृणादि, द्वेष, पर निंदा का सर्वथा अभाव रहता है।

जिसे ब्रह्म ज्ञान तथा ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति होती है उसे पर के दोष ढूँढ़ने और निंदा करने के भाव नहीं रहते किन्तु सर्व प्रकार की बुराई दूर हो जाती है।

अपने में सभ्य, पवित्र, निष्पक्ष विचारों को प्रबलता से स्थान दो। अपने हृदय में प्रेम-दया के भाव उत्पन्न करो। अपनी जिह्वा से सत्य भाषण का अभ्यास करो। इससे तुम शांति और पवित्रता के मार्ग में प्रवेश करोगे और अंत में नित्य अविनाशी प्रेम को प्राप्त करोगे। बिना कहे ही लोग तुम्हारी बात पर श्रद्धा करेंगे तथा भक्त बन जायँगे। बिना वाद-विवाद के लोग तुम्हारी शिक्षाओं के अनुसार आचरण करने लगेंगे और तुम्हारे सिद्धांतों को समझने लगेंगे। बुद्धिमान पुरुष स्वतः तुम्हें ढूँढ़ लेंगे और तुम्हें उनको परिचय देने की आवश्यकता न होगी। वे स्वतः अपने मन को तुम्हारे आधीन कर देंगे और तुम्हारे विचारों से एकमत होंगे।

विषय जन्य सुख वास्तव में सुख नहीं है किन्तु सुखाभास है जिसने स्वार्थ को नाश करके इन्द्रिय दमन किया है वह सब जीवों से समानभाव रखता है।

विषयजन्य सुख वास्तव में सुख नहीं है किन्तु सुखाभास है और क्षणिक तथा विनाशी है। सच्चा और पूर्ण अविनाशी सुख ईश्वरीय प्रेम में है। इस मिट्टी के पुतले से मनुष्य इतना प्रेम करता और इतनी इच्छाओं की पूर्ति करता है कि मानों सदा ये

अजर-अमर रहेगा। यद्यपि वे जानते भी हैं कि यह शरीर शीघ्र ही नष्ट हो जायगा तथापि मृत्यु से भय का विचार नहीं करते।

जगत में जो वस्तु स्थिर है उसका कभी नाश नहीं हो सकता और जो अस्थिर है वह कभी रह नहीं सकती। यह मनुष्य शरीर हाड़-मांस-चाम का बना हुआ कभी नित्य और स्थिर नहीं रह सकता। इससे इन्द्रियों का दमन और इच्छाओं को अपने वश में करके मनुष्य ब्रह्म-पद को प्राप्त कर सकता है। इससे मनुष्य मात्र को उचित है कि इन्द्रिय निग्रह कर पाशविक वासनाओं को दमन कर भोग विलासों में लिप्त न हों और सांसारिक सुखों को तुच्छ और क्षणिक समझें। सदाचार अरु धर्माचरण, दया, प्रेम, शांति, नम्रता, सहनशीलता आदि ईश्वरीय गुणों का अभ्यास करें और नित्य आत्मोन्नति करते जायँ। इसी से अंत में ब्रह्म-पद की प्राप्ति होगी। जिसने अपने स्वार्थ को नष्ट करके अपनी इन्द्रियों को वश किया है वह सब जीवों में समान भाव तथा सबको प्रेम दृष्टि से देखता है; किसी से द्वेष नहीं रखता, वही ब्रह्म ज्ञानी है और वही माया और ब्रह्म के भेद को जानता है। अतएव वही श्रेष्ठ, बुद्धिमान, दूरदर्शी और विवेकी है, उसी में सभ्यता, सहनशीलता, नम्रता, मृदु भाषण, इन्द्रिय निग्रह, स्वार्थ त्याग और प्रेम होता है। उसी पर विश्वास करो और जो कामी, क्रोधी, लोभी, अहंकारी तथा जिसमें प्रेम सहानुभूति न हो, उदारता, निःस्वार्थता न हो, विवेक शून्य हो ऐसे मनुष्य पर कदापि विश्वास नहीं करना, क्योंकि उसके वचन और कार्य नष्ट हो जाने वाले हैं। कारण यह कि उसकी नींव विनाशी वस्तु पर है। ये शरीर मृग तृष्णा के सदृश है अथवा स्वप्नवत् है इस पर विश्वास करना या मोहित होना अज्ञानता है। जिन्होंने ईश्वरानुभव कर लिया है वे कदापि इस पर मोहित नहीं होते।

लोग जीवन की कठिना-
इयों को दूर करते-करते
थक जाते हैं अन्त में पूरी
न करके मर जाते हैं, सब
कठिनाइयाँ स्वार्थ त्याग से
दूर होती हैं, किसमें कितना
सत्य है यह उसके प्रेम से
अनुमान किया जाता है।

लोग जीवन की कठिनाइयों को दूर करते-करते थक जाते हैं अंत में पूर्ण न करके चल बसते हैं। इसका कारण यह है कि स्वार्थ और इन्द्रियों के बंधन में बँधे रहते हैं उससे निकल नहीं पाते, इसी से ईश्वरीय ज्ञान से वंचित रहते हैं।

सर्व कठिनाइयां स्वार्थ त्याग से दूर हो जाती हैं और अज्ञानता का नाश हो जाता है। उसी से सारे भ्रम-जाल दूर हो जाते हैं।

किसी मनुष्य में कितना सत्य है, इसका अनुमान उसके प्रेम से किया जा सकता है। जिसमें प्रेम नहीं है तथा सहनशीलता नहीं है वह चाहे जैसे उच्च धर्म को मानने वाला हो तथापि उसमें सत्य बहुत कम है और जो प्रेमी तथा सहनशील है और जो दोनों पक्ष की युक्तियों को ध्यान पूर्वक सुन के निष्पक्ष हो कर विचार कर उसका परिणाम निकाल लेने के लिये उत्सुक रहते हैं उनमें पूर्ण रूप से सत्य वर्तमान है, ऐसा जानना चाहिये।

जितने ऋषि, मुनि, धर्म प्रचारक हुये हैं सबने स्वाथ और वासना का त्याग तथा इन्द्रिय-भोग-विलासों का त्याग किया है, सांसारिक सुख सम्पदा को तुच्छ समझा है, और सत्य और ब्रह्म का उपदेश दिया है और तदनुसार जीवन व्यतीत किया है।

उन के जीवन की घटनाओं अरु उनके उपदेशों का मिलान करने से ज्ञात होगा कि उनमें प्रेम शांति, नम्रता, निस्वार्थता और सरलता आदि एक ही प्रकार के गुण पाये गये हैं। उन्होंने इन्हीं गुणों का उपदेश किया और इन्हीं का स्वयं अभ्यास किया। इससे उनकी शिक्षा को भली-भांति समझ लेने से सर्व प्रकार के दोष नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य जाति के उद्धारक और मुक्तिदाता समझे जाते हैं, जिनकी उपासना एवं पूजा होती है, वे ईश्वरावतार थे। इसीलिये कषाय और वासनाओं से रहित थे तथा उनकी निज की कोई संपति न थी। इससे उन्होंने दूसरों को अपने मत में लाना या शिष्य बनाना उचित न समझा। ये पूर्ण पवित्रता से जीवन व्यतीत करते थे। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि काया-वाचा-मन से भलाई का प्रकाश करके मनुष्य जाति का उद्धार करें। ऐसे पूज्य पुरुष मनुष्य जाति का ईश्वर के साथ सम्बन्ध कराने वाले हैं। अर्थात् लोगों को मुक्ति मार्ग दिखाकर ईश्वर तक पहुँचाने वाले हैं।

जो सत्य मार्ग का अवलम्बन करना चाहता है वह अपने वासनाओं को मन्द करता है, शांति, अरु वासना अरु क्रोध को जड़ से निकाल देना।

जो सत्य मार्ग का अवलंबन करता है वह पहले अपने कषायों और वासनाओं को मन्द करना सीखता है। यही धर्म है। यहीं से ऋषि जीवन का आरम्भ होता है। उसी से मुक्तिद्वार दृष्टिगोचर हो जाता है। इसी को भगवान् ने "अमानित्व मदंभित्वादि" गुणों से या दैवी सम्पत्ति नाम से वर्णन किया है।

इससे जितना मनुष्य स्वार्थ का त्याग करता जाता है उतना ही उसका आत्मिक गुण बढ़ता जाता है। यहां तक कि अंत में परमात्मा स्वरूप हो जाता है।

शांति क्या वस्तु है ? स्वार्थ और वासना का त्याग देना और मन से क्रोध की गहरी जमी हुई जड़ को उखाड़ के फेंक देना और अंत:करण के विकारों को मिटा देना, इसी का नाम शांति है।

तुम्हारे सब पाप, चिन्ता भय, दुःख तुम्हारे उत्पन्न किये हुये हैं चाहे तुम उन्हें ग्रहण करो चाहे छोड़ दो, यदि तुम अपने को पवित्र बना लोगे तो शांति प्राप्त करोगे और अपवित्र रक्खोगे तो दुःख उठाओगे।

तुम्हारे सब पाप और दुःख, भय और चिंता तुम्हारी ही उत्पन्न की हुई हैं। चाहे तुम उन्हें ग्रहण किये रहो, चाहे त्याग दो, यह तुम्हारे ही हाथ में है। तुम आपही अपने को चिंता में डालते हो और आप ही नित्य और स्थायी सुख को प्राप्त कर सकते हो। दूसरा कोई तुम्हारे पापों को दूर नहीं कर सकता। तुम को आप ही अपने पापों को दूर करना होगा। शास्त्र आदि भी उपदेश करने के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं कर सकते और न स्वयं चल के सत्य मार्ग को दिखा सके। किन्तु उस मार्ग पर तुमको ही चलना होगा। दूसरे के चलने से तुमको मुक्ति नहीं हो सकती। जब तक तुम स्वयं उद्योग करके आत्मा को बंधन में डालने

वाले और सुख शांति से रहित अशुभ कर्मों का नाश न करोगे तब तक कदापि मुक्ति न होगी।

जो तुम होना चाहते हो अथवा होने का दृढ़ संकल्पक रते हो, तुम वही हो। तुम जैसा चाहो वैसा तुम अपने को बना सकते हो।

यदि तुम अपने को पवित्र बना लोगे तो शांति प्राप्त करोगे और यदि अपवित्र रक्खोगे तो दुःख और विपत्ति में ग्रसित रहोगे। इससे एक ओर चलो। अपने अभ्यंतर आत्म मंदिर में प्रवेश करो जहाँ सुख और शांति की शीतल वायु तुम्हारे मन को प्रफुल्लित करेगी और तुम्हें आनंद दायक होगी। ऐसा करने से तुम इसी जन्म में संसार समुद्र से तर जाओगे। वहाँ शोक दुःख, पाप, शंका, विपत्ति आदि का चिन्ह भी दिखाई न पड़ेगा। उस किनारे पर दया, पवित्रता, संतोष, ज्ञान और आनंद की अवस्था में प्राप्त होकर तुम स्वतः इस बात को जान लोगे कि आत्मा न उत्पन्न हुई और न कभी मरेगी, न कभी इसका अभाव हुआ, न आदि था, न अंत होगा किन्तु यह आत्मा अनादि, अनंत, अजर, अमर है तथा जन्म-मरण के दुखों से मुक्त है।

❀ *जिसने अपने स्वार्थ को नष्ट कर के अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है और सब जीवों को समान एवं प्रेम-भाव से देखता है वही ब्रह्मज्ञानी है; और वही माया और ब्रह्म के भेद को जान सकता है।*

मुक्तिधाम में प्रवेश

मोक्ष की प्राप्ति का मुख्य उपाय; अपने मन को पवित्र करे; वह पवित्रता अपने अवगुण के खोजने और नाश करने से प्राप्त होगी, जिसने मोक्ष प्राप्ति का दृढ़ संकल्प किया है वह ध्यान का अभ्यास करे।

मोक्ष की प्राप्ति का उपाय यह है कि अपने मन को पवित्र करे। वह पवित्रता अपने गुण तथा अवगुण के खोजने से मिलेगी। स्वार्थ परता का त्याग भी अवगुणों के ढूँढ़ने से ही हो सकता है। जब तक मनुष्य स्वार्थी बना रहेगा तब तक स्वार्थ परता अपने आप निवृत्त नहीं हो सकती किन्तु उसकी निवृत्ति के अर्थ ज्ञान की आवश्यकता है। उसका उपाय भगवद्भक्ति। भक्ति के बिना न तो उन्नति हो सकती है और न सिद्धि। इससे मोक्ष प्राप्ति में प्रथम पवित्रता सर्वोत्तम और परम उपयोगी है। उसकी प्राप्ति के लिये निरंतर उद्योग करना और श्रद्धा को बढ़ाना। उससे कभी विचलित नहीं होना। ज्यों-ज्यों मनुष्य में श्रद्धा बढ़ेगी त्यों त्यों दृढ़ प्रतिज्ञा, कार्य कुशलता और आत्म विश्वास आदि गुण आते जायँगे। पद पद पर उसकी उन्नति होगी। ज्यों ज्यों वह उनके अनुसार चलेगा त्यों त्यों वह परम हर्षित होगा।

अपने मन को वश करने से और पवित्र रखने से मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

यह माग इतना कठिन है कि स्वार्थपरता से दिखाई नहीं देता। इससे इसको त्याग के ध्यानाभ्यास करे। बिना ध्यानाभ्यास के केवल पवित्रता मात्र से ही कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे वाह्य पदार्थों के खाने से शरीर पुष्ट और बलवान होता है। वैसे ही ध्यान के अभ्यास के आत्म ज्ञान दृढ़ और पुष्ट होता है।

इससे जिसने मोक्ष प्राप्ति का दृढ़ संकल्प किया है वह ध्यान का अभ्यास प्रारंभ करे। अपने अंतःकरण में उठने वाली वृत्तियों को निरंतर देखे कि कौन कौन वृत्ति धर्ममार्ग में हानि कारक है। उनको जान कर उनके नाशार्थ उनसे विरोधी विचारों का अवलंबन न करे।

मोक्ष मार्ग से ३ द्वार हैं, वासना त्याग, रुचि अरु मंतव्य का त्याग और ममत्व का त्याग, ध्याना-भ्यास से अपने वासनाओं की जाँच का हाल मालूम होने लगेगा, जो संसार का सुधार करना चाहे वह प्रथम अपने मन का सुधार करे।

मोक्ष मार्ग के तीन द्वार हैं। उनमें प्रथम द्वार में वासनाओं

का त्याग, द्वितीय द्वार में रुचि और मंतव्य का त्याग और तृतीय ममत्व का त्याग करना पड़ेगा।

ध्यानाभ्यास करते करते अपने वासनाओं की जांच करने का ज्ञान होने लगेगा कि मस्तिष्क में वासना किस निमित्त से उत्पन्न होती है और उनका मन पर कैसा प्रभाव पड़ता है। तब उसे शीघ्र मालूम हो जायगा कि वासनाओं के त्याग किये बिना कदापि कार्य-सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि अब तक वह पशुवत् अपनी वासनाओं में बंधा रहता था। जैसे वह नचाती थी वैसे नाचता था। परन्तु अब वह मोक्ष की इच्छा से अपनी वासनाओं को रोकने अरु अपने वश करने का उद्योग करता है। जिसको शांति की इच्छा है उसे सदैव शांत भाव रखना चाहिये और यदि प्रेम की प्राप्ति की इच्छा है तो दूसरों से प्रेम भाव रखना चाहिये और यदि दुःख से बचने की इच्छा है तो दूसरों को न सताना चाहिये।

जो संसार का सुधार करना चाहे वह पहले अपना सुधार जब तक न करेगा तब तक दूसरे का सुधार कदापि न कर सकेगा। इससे पहले अपने अंतःकरण से अवगुणों को निकालने का अभ्यास करना चाहिये।

प्रथम अपना यह सिद्धांत कर लो कि अब मैं शास्त्रोक्त मार्ग से चलूँगा। मैं विषयों के प्रलोभन की ओर ध्यान तक न दूँगा। जो विषय मुझे मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा से गिराने वाले हैं ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञा करने से और शास्त्रोक्त मार्ग पर चलने से तुम सदा सत्य पर दृढ़ रहोगे।

सत् आचरण का अर्थ प्रतिदिन अपनी पाप वासनाओं को देख कर उनको उठने न देना और प्राचीन वासनाओं के त्याग का यत्न करना। परन्तु पवित्रता का अर्थ है पाप की ओर दृष्टि

भी न देना किन्तु उनको बिलकुल भुला देना जिससे पुनः उत्पन्न न होवें, ऐसा धीरे-धीरे अभ्यास करना चाहिये ।

जो उद्योग छोड़ के टाल-मटोल करेगा उसे कार्य सिद्धि न होगी यदि अहंकार को त्याग दे तो जगत की प्राकृतिक सरलता दिखाई देने लगे, ईश्वर के विषय में तर्क करना छोड़ कर विश्वव्यापी प्रेम की खोज करो जब तक काम क्रोधादि बुरी वासनाओं को न त्यागोगे तब तक कुछ भी न देख सकोगे ।

जो मूर्ख वर्तमान काल में उद्योग को छोड़ कर टाल मटोल के कुमार्ग को ग्रहण करता है और कहता है कि कल मैं जल्दी उठूँगा और अपनी इच्छाओं का निरोध करूँगा । परन्तु बुद्धिमान पुरुष जो वर्तमान काल के महत्व को जानता है वह उसी दिन से शीघ्र उठता है और अपनी इच्छाओं का निरोध करता है । इससे बल, शांति और सफलता सदा उसके साथ रहती है । इससे सदा वर्तमान पर लक्ष दे कर भविष्य में करने का विचार छोड़ दे तो अवश्य ही शीघ्र सफलता प्राप्त होगी ।

यदि मनुष्य अहंकार का त्याग कर दे तो प्राकृतिक जगत सरल दिखाई पड़ने लगे और सर्व भ्रम निवृत्त होने लगे और पुनः एक छोटा सा बालक बन जायगा और प्राकृतिक सरलता आ जायगी ।

जब मनुष्य ममत्व को सर्वथा भूल जाता है तब उसका भ्रम दूर हो जाता है और सत्य का ज्ञान हो जाता है।

ईश्वर के विषय में तर्क करना छोड़ कर अपने हृदय में विश्वव्यापी प्रेम की खोज करो। ऐसा करने से तर्क-वितर्क की निस्सारता मालूम होने लगेगी और तुम अपने को जान कर परमेश्वर को भी जान लोगे।

जब तक काम, क्रोधादि बुरी वासनाओं का त्याग न करोगे तब तक कुछ भी देख न सकोगे और न जान सकोगे चाहे तुम कालेजों में बड़े विद्वान भी समझे जाते हो तथापि इस मार्ग में किंचित लाभ न कर सकोगे।

पवित्र मनुष्य की बातें इतनी सरल होती हैं कि उसे अपनी सरलता और पवित्रता के प्रमाण में तर्क वितर्कादि करने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु अपवित्र मनुष्य को अपनी बात सिद्ध करने के लिये अनेक तर्क-वितर्क करने पड़ते हैं क्योंकि आत्मा सत्य स्वरूप है। जो सत्य के सिद्धांत पर चलता है उसका जीवन ही उसका साक्षी हो जाता है। न वह तर्क-वितर्क करता है और न बकबक करता है, किन्तु अपने सिद्धांतों को अपने कार्यों द्वारा प्रगट करता रहता है।

प्राकृतिक सरलता इतनी सरल है कि जब तक सब बातों से अपना सम्बन्ध न छोड़ दे तब तक नहीं देख सकता।

इच्छा शक्ति इससे मजबूत होती है क्योंकि उसके नीचे शून्य स्थल होता है। ऐसे ही बुद्धिमान अपने को शून्य स्थल कर देने से अर्थात् स्वार्थ को निकाल देने से सशक्त और अजेय हो जाता है।

विनय संतोष, प्रेम, बुद्धि-
मत्ता-ये प्राकृतिक सरलता
के अंग हैं, जो प्राकृतिक
सरलता को प्राप्त कर लेता
है उसका अज्ञान नष्ट हो
जाता है।

विनय, संतोष, प्रेम, बुद्धिमता ये प्राकृतिक सरलता के प्रधान अंग हैं। इस कारण सदोष मनुष्य प्राकृतिक सरलता को नहीं समझ सकते। जो निर्दोष हैं वे ही समझ सकते हैं। इसी से मूर्ख कहते हैं कि कोई बुद्धिमान नहीं है तथा सदोष कहते हैं कि कोई निर्दोष हो ही नहीं सकता। इससे सदोष मनुष्य जन्म भर किसी निर्दोष के साथ रहें परन्तु दोषों को त्याग किये बिना निर्दोषता के भावों को न देख सकेगा। वह विनय को कायरता और संतोष को तथा प्रेम, दया भाव को निर्बलता समझेगा और बुद्धिमत्ता उसे मूर्खता दिखाई देगी।

जो सर्वथा निर्दोष हो गये हैं वे ही ठीक-ठीक निर्णय कर सकते हैं। इससे जब तक स्वयं निर्दोष न हो जाय तब तक अपना मंतव्य स्थिर न करना चाहिये।

जब मनुष्य प्राकृतिक सरलता को प्राप्त कर लेता है तब उसके आगे अज्ञान, अंधकार नहीं रहता। वह सब पदार्थों के स्वरूप को पहचान लेता है।

जो अपने हृदय को पवित्र
कर लेता है वह दूसरे के
हृदय की बात को जान
लेता है, जब मनुष्य पवित्र

हो जाता है तब उसकी सब
शंका निवृत्त हो जाती है ।

जो अपने हृदय को पवित्र कर लेता है वह दूसरे के हृदय की बात को भी जान लेता है और विचारों को भी जान जाता है। जो अपने विचारों पर अधिकार प्राप्त कर लेता है वह दूसरे के विचारों को भी जान लेता है। इससे जो पवित्र है उसे अपने पक्ष का समर्थन नहीं करना पड़ता किन्तु वह दूसरों के विचारों को अपने विचारों के अनुकूल कर लेता है।

जब मनुष्य पवित्र हो जाता है तब उसके सामने सब शंका दूर हो जाती है। इससे पवित्रात्मा को भ्रमनाशक कहते हैं। जब पाप नहीं रहता तब कौन सी शंका मनुष्य को सता सकती है। जो पवित्रता को खोज लेगा वह माया के पर्दों को हटा के संतोष, शांति, सुख को प्राप्त कर सकेगा क्योंकि पवित्रता और प्राकृतिक सरलता दोनों एक ही वस्तु हैं।

❀ ध्यान मुक्तिधाम की कुञ्जी है।

अत्तय बुद्धिमत्ता

अत्तय बुद्धिमत्ता की जिसे चाहना है वह अपने द्रव्य तथा चालचलन को दूसरों से बढ़ के न समझे तथा दूसरों के मंतव्य और व्यवहारों को विशेष न समझे क्योंकि ऐसा समझने से अहंकार वृद्धि और तमोगुण की वृद्धि से बुद्धि की तीव्रता जाती रहती है और वह बलवान तथा दृढ़ नहीं हो सकता।

जो अपनी संपत्ति में और अपने में कुछ भेद नहीं मानता वह संपत्ति के नष्ट हुये, यह समझता है कि मेरा सर्वस्व नष्ट हो गया तथा जो अपनी परिस्थितियों का अपने को दास बनाता है वह अपनी वाह्य दशा के साथ आप भी बदलता रहता है। ऐसे ही दूसरों से की हुई अपनी प्रशंसा को जो अपने जीवन का आधार मानता है, वह बहुत उद्विग्न रहता है और उसे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ता है। अपने को हरएक वाह्य पदार्थ से प्रथक करने और जानने से तथा अपनी आंतरिक सद्वृत्ति के अनुसार चलने को अत्तय बुद्धिमत्ता कहते हैं। जिसे ऐसी बुद्धिमत्ता प्राप्त हुई है वह अमीरी और गरीबी दोनों में एक रस रहता है। न तो अमीरी उसके बल को बढ़ाती है और न गरीबी उसके शांति का नाश करती है। जिसने अपने आंतरिक दोषों को दूर कर दिया है उसे अमीरी दूषित नहीं कर सकती।

जो बुद्धिमान हैं उनको अपनी भूलें तत्काल मालूम हो जाती हैं बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा ज्ञान ये सब अपने भीतर ही मिलते हैं।

जो बुद्धिमान हैं उनको अपनी भूलें तत्काल मालूम हो जाती हैं। वह उन भूलों से भी परमोत्तम शिक्षा ग्रहण करते हैं। वह जानते हैं कि ईश्वरीय आदेशानुसार चलने से भूल हो ही नहीं सकती इससे वे शीघ्र ही पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। किसी वस्तु या किसी मनुष्य को देखकर उनके मन में क्षोभ नहीं होता। किन्तु उससे भी वे शिक्षा ही ग्रहण करते हैं। वे किसी से प्रेम की याचना नहीं करते किन्तु स्वयं सबसे प्रेम करते हैं।

जो मनुष्य विचलित हुये बिना ही शिक्षा ग्रहण करते हैं अथवा दूसरों के प्रेम न करने पर भी उनसे प्रेम प्रगट करते हैं उनमें अक्षय बुद्धिमत्ता की शक्ति है।

जो अपने मन में कहता है कि मैं सबको शिक्षा दूँगा परन्तु मैं किसी से शिक्षा ग्रहण न करूँगा वह न तो दूसरों को शिक्षा दे सकता है और न उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकता है। जब तक वह ऐसा विचार रक्खेगा तब तक मूर्ख ही बना रहेगा।

बुद्धिमत्ता, शक्ति तथा ज्ञान ये सब अपने भीतर ही मिल सकते हैं, परन्तु ये सब बातें अहंकारयुक्त को नहीं मिल सकतीं। किन्तु इन बातों को ईश्वरीय आज्ञा तथा श्रेष्ठ पुरुषों की आज्ञा पालन, विनय और शिक्षा ग्रहण की इच्छा से प्राप्त कर सकता है। उसे ईश्वराज्ञा पालन करना अरु भोग-विलासों में निमग्न न रहना चाहिये।

जो अहंकार को अपने जीवन का आधार बना लेगा और दूसरों से तथा अपने अनुभव से शिक्षा ग्रहण न करेगा वह अवश्य अपना सर्वनाश कर लेगा। एक महात्मा ने अपने चेलों से कहा था कि यदि तुम शिक्षा और गुण ग्रहण करना सीख लोगे तो अपने मार्ग को आप ही खोज सकोगे और सत्य पर सदा दृढ़ रहोगे, सत्य को ही अपना मार्ग प्रदर्शक मानोगे और सत्य के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करने की आशा रक्खोगे। यही आत्म प्राप्ति की सर्वोच्च सीढ़ी है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होगी। मूर्खता, बुद्धिमत्ता, बल का निवास अरु निर्बलता का निवास अपने भीतर ही है। ये बातें न किसी वाह्य पदाथ में रहती हैं और न इनकी उत्पत्ति किसी वाह्य पदार्थ से होती है। जैसे जो बलवान होना चाहता है उसे स्वयं बल की वृद्धि का उपाय करना चाहिये। वैसे जो अपने मन पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है उसे ऊपर कही हुई बातों का अभ्यास स्वयं करना चाहिये।

वाह्य अवलम्बनों को छोड़
कर सत्य पर भरोसा करना
विषय प्रलोभन के समय
अंतस्थ ज्ञान की अपेक्षा है।

वाह्य अवलम्बनों को छोड़कर सत्य पर भरोसा करना चाहिये।

विषय प्रलोभन के समय कोई धर्म रक्षा नहीं कर सकता किन्तु उस समय अपने अंतस्थ ज्ञान की ही अपेक्षा है जो प्रलो-भन को नाश कर सकता है। आपत्ति के समय दर्शनशास्त्र कुछ काम नहीं देता किन्तु अपने भीतर जो सुबुद्धि है वही नाश कर सकती है। अपने मस्तिष्क में पवित्र विचारों को निरंतर करने

से और शुभ कर्म करने से ही अक्षय बुद्धिमत्ता की प्राप्ति हो सकती है।

मनुष्य सन्मार्ग का खोज कर सकता है वह वर्तमान दशा का सदुप्रयोग करे, अपने को सुधारना और बिगाड़ना अपने हाथ में है।

मनुष्य चाहे जिस स्थिति में हो परन्तु वह सदा सत् मार्ग को खोज सकता है। उसका उपाय यह है कि अपनी वर्तमान दशा का ऐसा सत् उपयोग करे कि बलवान और बुद्धिमान हो जाय। प्रथम विलास प्रियता को छोड़ कर पवित्रता और आत्म-निर्भरता को प्राप्त करे और अपने सर्व कर्तव्य कर्मों का पालन करने में हर्ष सहित एकचित्त होवे। ऐसे कार्य करने से अक्षय बुद्धिमत्ता और दैवी संतोष और बल की प्राप्ति अवश्य होगी। भय और स्वार्थ प्रेम और बुद्धिमत्ता के सामने नहीं ठहर सकते—संदेह, चिंता, दुःख का निवास, स्वार्थपरता रूपी अधोलोक में है परन्तु ये बातें उसको दुःख नहीं दे सकती जो आत्मोन्नति के ऊर्ध्वलोक में पहुँच गया है।

इन बातों को अच्छी तरह याद रक्खो कि अपने को सुधारना और बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ में है। यदि तुम अपने जीवन को पाशविक वासनाओं में और मानसिक तर्क-वितर्क में लगाओगे तो अधःपतन को प्राप्त होगे और यदि अपने जीवन को सदाचार और पवित्रता में लगाओगे तो उच्च ज्ञान की प्राप्ति होगी।

विनयशीलता

विनय-शील का पता
आपत्ति से लगता है,
विनय-शीलता आध्यात्मिक
गुण है, विनयशील स्वत्व
नहीं चाहता इसी से बुरा
भी नहीं मानता ।

विनयशीलता का पता आपत्ति से सम्यक् लगता है। आपत्ति में दूसरों के पैर उखड़ जाते हैं परन्तु वह जमा रहता है, जो कोई उससे विरोध करता है। तब न तो उनसे लड़ता है न पुकार करता है किन्तु दूसरों के क्रोध वा पक्षपात में अधीर नहीं होता। वह जानता है कि मैंने बुरी बातों को अपने भीतर से निकाल दिया है वह पवित्रता की प्रौढ़ शक्ति से सुरक्षित रहता है। विनय-शील अपना नाम करना नहीं चाहता और न वह अभिमान करता है। न अपनी शक्ति दूसरों को जनाना चाहता है। वह दूसरों से अपनी प्रशंसा की चाहना नहीं करता। चाहे कोई देखे और चाहे न देखे वह विनयशीलता का कदापि परित्याग नहीं करता। विनयशीलता आध्यात्मिक गुण है। इससे केवल अंतर्दृष्टि से देखा जाता है। जिन्होंने आत्म उन्नति नहीं की वे न उस गुण को देख सकते हैं और न उससे प्रेम कर सकते हैं।

यद्यपि विनयशील स्वत्व❀ नहीं चाहता। इससे उसे अपनी रक्षा करने की अथवा अपने को निर्दोष सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका जीवन प्रेममय होता है। इससे उसकी रक्षा उस प्रेम द्वारा होती है जो विश्व का आधार है

❀ स्वत्व = अधिकार ।

वह न तो किसी वस्तु को अपनी कहता है और न स्वार्थ साधन में लगा रहता है। इससे सर्व वस्तु उसे अपने आप मिल जाती है और सब जगत उसकी रक्षा करता है। वह विनयशीलता सर्वथा स्वार्थ को त्यागने से मिलती है। अर्थात् स्वार्थ को और स्वार्थ विचारों को सर्वथा त्याग देना चाहिये।

इसी से विनयशील कभी बुरा नहीं मानता। वह घृणा, मूर्खता, वृथाभिमान से बहुत दूर रहता है। इससे उसे कभी असफलता नहीं होती। जिसको मुक्ति की इच्छा है उसे विनयशीलता प्राप्त करनी चाहिये। अपने धैर्य और सहिष्णुता को नित्य बढ़ाते रहना, कठोर वचनों का त्याग और स्वार्थमय तर्क-वितर्क को मस्तिष्क से निकाल देना चाहिये। यदि वह इन बातों पर ध्यान रक्खेगा तो उसके हृदय में पूर्वोक्त गुण अवश्य उत्पन्न होंगे। तुम अपने दोषों को देख सकते हो और अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करने तथा निर्दोष बनने के अर्थ नित्य उद्योग करते रहे हो, इससे तुम में जितनी कठोरता अरु स्वार्थपरता है उतनी ही विनयशीलता अरु प्रेम की तुम्हें आवश्यकता है। यदि दूसरे तुमको हानि पहुँचाना चाहते हैं तो तुम्हारे लिये और भी आवश्यकीय है कि तुम दूसरों की हानि करना छोड़ दो और उनसे प्रेम करो।

यदि तुम विनयशीलता, नम्रता और प्रेम का उपदेश देते हो और स्वयं वैसा आचरण न करते हो तो तुमको दुःखी न होना चाहिये। किन्तु दूसरों से व्यवहार करते समय उपरोक्त बातों का पालन करना चाहिये। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम सारे संसार को शिक्षा दे सकोगे चाहे तुम उपदेश का एक अक्षर भी न कहो। तुम ज्यों-ज्यों विनयशील होते जाओगे त्यों-त्यों सारे जगत् के गुप्त-गुप्त रहस्यों को भी जान लोगे।

पवित्रात्मा

पवित्रात्मा ऐसा कोई काम
नहीं करता जिसे छिपाना
पड़े।

यद्यपि पवित्र मनुष्य ऐसा कोई काम नहीं करता जिसे दूसरों से छिपाना पड़े अथवा वह कोई ऐसी इच्छा नहीं करता जिसे दूसरों से प्रगट न कर सके। इससे वह निर्भय रहता है और उसे कभी लज्जित होना नहीं पड़ता। वह जो काम करता है सो दृढ़तापूर्वक करता है और जो कहता है सो यथार्थ कहता है। किसी से झिझकता नहीं क्योंकि जो किसी का अहित नहीं करता वह किसी से क्यों डरे। जो किसी को धोखा नहीं देता वह किसी से लज्जित भी नहीं होता। जो किसी की हानि नहीं करता उसे दूसरे भी हानि नहीं पहुँचाते। पवित्र मनुष्य सब काम बड़ी निश्छलता से करता है और पापों से बहुत दूर रहता है। इससे कोई किसी बात में उसे दबा नहीं सकता। जिसने पवित्रता के आंतरिक शत्रुओं का नाश किया है उसे न कोई बाह्य शत्रु परास्त कर सकता है और न उसे बाह्य शत्रुओं से अपनी रक्षा करनी पड़ती है क्योंकि उसकी पवित्रता ही उसकी रक्षा करती है।

जो अपवित्र है उसे प्राय:
सभी बातों से दबना पड़ता
है, श्रेष्ठ जन कभी दिखावे
की इच्छा नहीं करते।

जो अपवित्र है उसे प्राय: सभी बातों में दबना पड़ता है क्योंकि वह अपने मनोविकारों का और अपने पक्षपात का दास

बना रहता है। जब दूसरे उस पर दोषारोपण करते हैं तब उसे बड़ा दुःख होता है क्योंकि वह स्वतः दोषी है। अपनी रक्षा के लिये पवित्रता है नहीं, इससे उसका बदला ले कर अथवा नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करके या धोखा दे कर अपने को निर्दोष सिद्ध करता है। यदि किसी के दुःख वा हानि का कारण दूसरा मनुष्य हो तो उसे अपने दोषों को देखना चाहिये। यदि वह पक्षपात और अपनी रक्षा के विचार छोड़ देगा तो मालूम हो जायगा कि मेरा मन ही दुःख का कारण है।

जिसने अपनी पाप वृत्तियों को नाश किया है उसकी कोई हानि नहीं कर सकता। वह सदा शुभ कर्म करता रहता है और शरीर, मन वाणी से कोई पाप नहीं करता, इससे उसके जीवन का फल अच्छा ही होता है।

❀ *आपत्तियाँ विनयशीलता की परीक्षायें हैं।*

महानता

श्रेष्ठजन कभी दिखावे की इच्छा नहीं करते। वे सदा अपना काम किया करते हैं। किसी से अपनी प्रशंसा नहीं चाहते। इसी से महात्मा न तो सुगमता से मिलते हैं न पहिचाने जाते हैं। जो लघु होता है वह अधिकार और ऐश्वर्य की इच्छा करता है। परन्तु महात्मा कभी ऐश्वर्य की इच्छा नहीं करते क्योंकि जो पाने की इच्छा करता है वह गवाँता है। परन्तु जो गँवाने की इच्छा करता है, वह दूसरों का प्रेम पात्र बन जाता है। यदि तुम अहंकार को छोड़ कर सीधे सादे हो जाओ तो तुम महान् हो जाओगे। जो स्वार्थ के वशीभूत हो कह ऐश्वर्य की इच्छा करता है उसे दीनता के बिना कुछ नहीं मिल सकता। परन्तु जो सबका सेवक बनना चाहता है और स्वयं ऐश्वर्य की इच्छा नहीं करता वह दूसरे की प्रतिष्ठा का पात्र बन जाता है और बड़ा कहलाता है।

छोटा बनना ही बड़ा
बनना है-बुद्धिमान दूसरों के
अनुभव से लाभ उठाते हैं
और मूर्ख अपने में ही भूले
रहते हैं।

एक विद्वान का कथन है कि छोटा बनना ही बड़ा बनना है। इससे यदि तुम अपनी वासनाओं, कषायों और अभिमान को जीर्णवस्त्रवत् छोड़ दोगे और प्रेम, दया, स्वार्थ और त्याग के मार्ग पर चलोगे तो तुम छोटे न रहोगे किन्तु बड़े ही हो जाओगे।

इस बात को अच्छी तरह याद रक्खो कि तुम ईश्वर के अंश हो, तुम अपने ही अविश्वास से ईश्वर से दूर हुये हो। इससे आँख खोलो, पाप बन्धनों को तोड़ कर अपने मोक्ष धाम को ग्रहण करो। मिथ्या विश्वास में अपने मन को कलुषित मत करो।

तुम अमर हो यह बात तुमको विचार करने से मालूम हो जायगी। यदि तुम अपने अपवित्र विचारों को दूर करोगे तो तुमको मालूम होगा कि हम एक दिव्य आत्मा हैं और पवित्र तथा प्रेम मय विचारों से पूर्ण हैं। इस संसार में पाप दुःख और निकृष्टता तुम्हारे ही हिस्से में नहीं आई है।

यदि तुम इनको स्वतः स्वीकार करोगे तो वे अवश्य तुम्हारे गले पड़ेंगे और सर्वत्र तुम्हारे साथ रहेंगे तुम्हारे हिस्से में तो मोक्ष आया है। मोक्ष ही तुम्हारी संपति है इससे उसकी प्राप्ति के लिये सद्विचार और सत् लक्षणों क संपादन करो। इसी से अवश्यमेव कल्याण होगा; जीव की यही सफलता है।

अनुभव सहज में नहीं
होता किन्तु अनेक कष्ट
उठाने पड़ते हैं। शरीर
की भाँति चित्त भी रोगी
हो जाता है प्रत्येक मनुष्य
चाहे तो अपने को संतुष्ट
और सुखी रख सकता है।

बुद्धिमान दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं परन्तु मूर्ख केवल अपने आप ही में भूले रहते हैं। सदुपदेशों से लाभ उठाना अपने अनुभव मात्र से लाभ उठाने से कहीं अच्छा है।

अनुभव सहज ही प्राप्त नहीं होता किन्तु इसमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। जैसे हाथ जलने का अनुभव बिना जले नहीं होता।

बुद्धिमान लोग दूसरों के अनुभव से लाभ उठाते हैं और आप दुख से बच जाते हैं। परन्तु मूर्खों को स्वतः कष्ट उठाये बिना कुछ अनुभव नहीं होता। इसका कारण यह है कि वे दूसरों को मूर्ख समझते हैं।

शरीर की भाँति चित्त भी रोगी हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसका दूर करना तो अति आवश्यक है परन्तु सहज नहीं। तुच्छ दुःखों से बड़ा कष्ट नहीं होता यदि उन्हें विस्तृत होने अर्थात् बढ़ने से रोके।

प्रत्येक मनुष्य यदि चाहे तो अपने को संतुष्ट और प्रसन्न रख सकता है। यह काम अपने ही किये से हो सकता है दूसरों की लाख सहायता से नहीं। वह उपाय यह है कि मनुष्य जब स्वस्थ या खाली होता है उस समय संध्या की छाया की तरह पुरानी बातें आपसे आप स्मरण करके उन्हीं में तल्लीन हो कर दुःखी होता है और बिना प्रयोजन के संकल्प कर उनके संबंध से अन्य संकल्पों को करके वृथा दुःख को बढ़ाता है। सबसे बड़ी आपत्ति यही है व्यक्ति उसे अपने आप निर्माण करता है। इससे यह दुःख दूर करने के लिये सदैव चित्त को किसी कार्य में लगाये रहना चाहिये। शरीर के *मानसिक वेग* रोकने से बहुत लाभ होता है। काम, क्रोध, लोभ किसी वस्तु को अयोग्यता तथा अनधिकार लेने की चेष्टा करना। अर्थात् किसी पर-स्त्री को बलात्कार कामवश ग्रहण करना—तथा क्रोधवश थोड़े निमित्त से भी दूसरे को विशेष हानि पहुँचाना या दुःख देना—तथा लोभ से किसी वस्तु को अयोग्यता तथा स्वार्थ से ले लेना या यथोचित व्यय न करना, निर्लज्जता—ईर्ष्या (डाह करना) रोग (किसी वस्तु में अधिक आसक्त होना) अभिध्या (दूसरे के

अवगुणों को देखना) कठोर वचन, चुगली झूठ, बे प्रसंग बोलना *वाचिक वेग* हैं, और चोरी मारपीट आदि अन्य *शारीरिक* वेग हैं। इन वेगों को उठते ही दबा देना चाहिये। यदि स्वयं न रोके जा सकें तो किसी सज्जन, विद्वान, सत्यवादी साधू, अनुभवी वृद्ध पुरुष से इनकी चिकित्सा करानी चाहिये। परन्तु चिकित्सा कराते समय इन वेगों को उभारने वाले लोगों से परहेज भी अवश्य करना चाहिये, क्योंकि पथ्य बिना औषधि किंचित मात्र गुण नहीं करती। धूर्त, पापी, मिथ्याभाषी, अन्यायी, चुगलखोर, लोभी, लालची, डाही, क्रूर, निंदक, ओछा, निर्दय और शत्रु अरु धर्म विमुख आदि से संग बचाना ही पथ्य है।

उपर्युक्त नियमों के पालन से और विचार युक्त अमल करने से ही सत-असत का विवेक जाग उठता है और मनन तथा निध्यासन से भगवत्-ज्ञान-रत्न की प्राप्ति होती है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम पूर्णात् पूर्णमद उच्चते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावषिष्यते।

अमूल्य-दोहे

कहा भरोसो देह को, बिनसि जाहि छिन माहि।
श्वांस-श्वांस सुमिरन करो, और जतन कछु नाहि॥

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय।
को काहू को है नहीं, सब देखा ठोक बजाय॥

कबिरा रसरी पांव में, कहँ सोवे सुख चैन।
स्वांस नगारा कूंच का, बाजत है दिन रैन॥

इस अवसर चेता नहीं, पशु ज्यों पाली देह।
राम नाम जपना नहीं, अन्त पड़ी मुख खेह॥

बहुत गई थोड़ी रही, नारायण अब चेत।
काल चिरैया चुगि रही, निश दिन आयू खेत॥

नारायण सुख भोग में, क्यों लम्पट दिन रैन।
अन्त समय आयो निकट, देखि खोल के नैन॥

धन यौवन यो जायगो, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण भगवान भजि, वृथा फिरै क्यों मूढ़॥

नारायण निज हाथ पर, जे नर धरत सुमेरु।
तेऊ वीर वा भूमि पर, भये राख के ढेर॥

अरब खरब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
जो तुलसी निज मरण है, तो आवे केहि काज॥

ज्ञान का भूषण क्षमा है, धारे पुरुष सुजान।
सदा समाधि होइ है, करै अद्वैत ध्यान॥

अन्दर सों मैलो हियो, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलो, कौआ तन मन एक॥

तू ही नदियां ताल है, तू ही सिन्धु महान।
तू ही चौदह लोक है, सर्व रूप भगवान॥

चार वेद षट शास्त्र में बात मिली हैं दोय।
सुख दीन्हें सुख होत है दुख दीन्हें दुख होय॥

ग्रन्थ, पन्थ सब जगत के बात बतातें तीन।
राम हृदय, मन में दया, तन सेवा में लीन॥

समता रूपी कौच को पहिरे पुरुष जो आन।
काम क्रोध रिपु जीव के, तिनके लगे न बान॥

ब्रह्म रूप सब जगत है घट पट भूमि तन्त।
यही दिव्य दृष्टी भली आतम जान अनन्त॥

यह तन काँचा कुम्भ है, माँहि किया रहवास।
कबिरा रैन निहारिया, नहीं पलक की आस॥

कबिरा जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेत सके तो चेतिये, मौत परी है ख्याल॥

ॐ ओ३म् ॐ

नारायण की नारायण से पुकार

मेरी बार-बार विनती प्रभु जी,
भव आश विगत रति चरणन हो।
छल, दम्भ, कपट सब दूर रहें,
मल विगत हो मन, तन शीतल हो॥
पर अवगुण में ना प्रीति बढ़े,
संतोष बढ़े धीरज मन हो।
मन विषयों से नित मुक्त रहे,
सदा ध्यान रहे, परमारथ हो॥
जगदीश! दया, तप, संयम हो,
दृढ़ नियम, शील, सुमति, बल हो।
सब जीवों संग सम प्रेम बढ़े,
निज बोध बढ़े, मोह मान न हो॥
प्रभु प्रेम बढ़े निज आतम में,
मिटें राग द्वेष, मन आनन्द हो।
ना आन बढ़े ना शान बढ़े,
हिय नारायण, परमानन्द हो॥

हे भक्तों, यदि आप आनन्द चाहते हैं तो शान्त चित्त होकर बार-बार इस पुकार को प्रभु से करो। अवश्य ही आपकी पुकार सुनेगा और तब वह परमानन्द भगवान आपको आपकी भक्ति के अनुसार आनन्द देगा।

—नारायण स्वामी